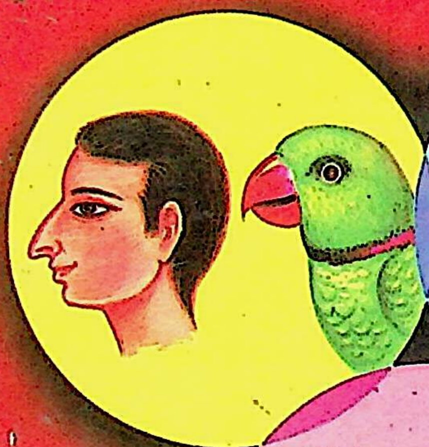
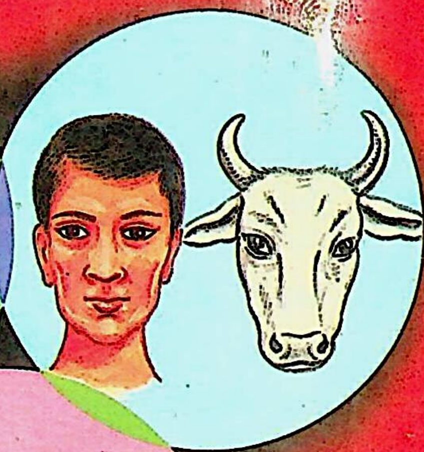
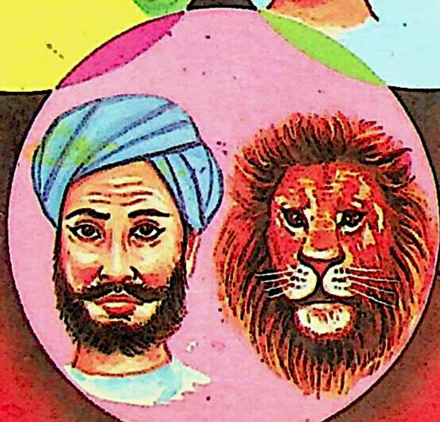


गोचर शर्मा

मुखाकृति विज्ञान







3-1

व्यक्ति की मुखाकृति उसके मन, मस्तिष्क एवं सम्पूर्ण शरीर का एक्स-रे है, जिसमें उसका चरित्र, स्वभाव, रुचि एवं प्रकृति आदि सब कुछ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक की सहायता से आप यह सब आसानी से पढ़कर किसी भी व्यक्ति के सम्बन्ध में सही-सही भविष्यवाणी कर सकते हैं।

—

एक प्रामाणिक पुस्तक

मुखाकृति-विज्ञान

गोचर शर्मा



अंकुर पब्लिकेशन्ज़

प्रकाशक
अंकुर पब्लिकेशन्ज़,
30/20, शक्तिनगर, दिल्ली - 110007

आठवां संस्करण
सितम्बर, 1991

मूल्य
बीस रुपये

भूमिका

इस बुद्धिवादी युग में सभी प्रकार के वर्गों में ज्योतिष के प्रति अत्यधिक आकर्षण पाया जाता है। प्रत्येक मनुष्य के मन में अपने जीवन का भविष्य जानने की जिज्ञासा रहना अत्यन्त स्वाभाविक है। अतः सामान्य जनता के लिए इस शास्त्र के विभिन्न अंगों का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक परिचय स्थूल रूप से देने वाली स्तरीय एवं सुलभ पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है।

श्री गोचर शर्मा द्वारा लिखित 'मुखाकृति-विज्ञान' पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई। शर्मा जी ने पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों के सम्बन्धित ग्रन्थों से सहायता लेकर एवं सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के हेतु अनेक आकृतियाँ और चित्र देकर अपने ग्रन्थ को अत्यधिक परिपूर्ण बनाने का सफल प्रयत्न किया है।

मुझे विश्वास है कि विषय-विवेचन, सुगम भाषा-शैली, उपशीर्षकों की योजना, समर्पक उदाहरण, आवश्यक चित्र एवं आकृतियों, संतुलित विचार-धारा एवं निरभिमानयुक्त मत-प्रदर्शन आदि अनेक कारणों से यह ग्रन्थ सामान्य जनता में यह विश्वास उत्पन्न कर सकेगा कि सामुद्रिक शास्त्र के गम्भीर एवं सन्तुलित अध्ययन द्वारा मनुष्य इच्छा-शक्ति एवं कर्मठता के अनुरूप अपने भाग्य को संवर्धित, संशोधित एवं परिवर्तित कर सकता है। मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वे इसी प्रकार की सरल एवं सन्तुलित पुस्तकें लिखकर जनता को सामुद्रिक-शास्त्र के प्रति सजग दृष्टि प्रदानकर सकेंगे।

ह० वि० पाटस्कर

कुलगुरु, पुणें विश्वविद्यालय पुणें

प्रारब्ध और पुरुषार्थ

"भाग्यं फलति सर्वत्र; न च विद्या न च पौरुषम् ।"

उपरोक्त मान्यता के आधार पर कर्म से भाग्य को श्रेष्ठ मानने वालों की इस विश्व में कमी नहीं; किन्तु क्या भाग्य वास्तव में कर्म से उच्च; शक्तिशाली एवं सर्वोपरि है ? यदि ऐसा है तो वेद, श्रुति, स्मृति एवं पुराणों आदि में वर्णित कर्म की महत्ता का क्या अर्थ है ?

कर्म और भाग्य की इस गुत्थी को सुलझाने के लिए आइए, जरा भारतीय दर्शन के पृष्ठों को उलटें ।

जनम-जनम के फेरे—भारतीय दर्शन का एक मौलिक सिद्धान्त पुनर्जन्म है । इससे केवल आत्मा का ही अस्तित्व सिद्ध नहीं होता वरन् जीवन की विभिन्न पहेलियाँ भी सुलझ सकती हैं । संक्षेप में पुनर्जन्म को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है कि शरीर-विनाश के साथ ही आत्मा का विनाश नहीं होता । मरणोपरान्त, आत्मा शरीर को त्याग कर उस जन्म के अर्जित सकाम कर्मों एवं मन और इन्द्रियों के सूक्ष्म भाव सहित दूसरे शरीरावरण में प्रवेश करती है । सम्भव है कुछ महानुभाव इसे कपोल-कल्पित मान कर इस पर विश्वास न करते हों, उनके सन्दर्भ हेतु पुनर्जन्म के संबंध में राजस्थान विश्वविद्यालय की परामनोविज्ञान संस्था के निर्देशक डा० हेमेन्द्रनाथ बनर्जी का यह कथन दृष्टव्य है—

'मरणोत्तर जीवन की समस्या का अध्ययन करने के लिए यहाँ तथाकथित पुनर्जन्म के पाँच सौ मामलों की जानकारी इकट्ठी की गई और अच्छी तरह जाँच करने के बाद यह माना गया कि पुनर्जन्म असम्भाव्य नहीं है ।'

कर्म—तत्ववेत्ताओं के अनुसार कर्म के तीन विभाग माने गए हैं—

(१) संचित—गत जन्म के अर्जित सकाम कर्म संचित कहलाते हैं, (२) प्रारब्ध—गत जन्म के संचित कर्म इस जन्म में प्रारब्ध या भाग्य के नाम से सम्बोधित किए जाते हैं, (३) क्रियमाण—इस जन्म के एकत्रित हो रहे सकाम कर्म जो भावी जन्म में संचित बनेंगे, क्रियमाण या आगामी कर्म के नाम से पुकारे जाते हैं।

यह कर्म भी दो प्रकार के होते हैं, एक प्रत्यक्ष एवं द्वितीय परोक्ष। प्रत्यक्ष कर्म के फल उसी जन्मावधि में प्राप्त होकर इस हाथ दे—उस हाथ ले वाली युक्ति को चरितार्थ करते हैं, जबकि परोक्ष कर्म भावी जन्म हेतु अपने गुणधर्मानुसार संचित होते रहते हैं। तात्पर्य यह कि परोक्ष का फल इस जन्म में प्राप्त न होकर अगले जन्म में प्राप्त होता है।

गुणधर्म—प्रत्येक कर्म के क्रमशः तीन गुण होते हैं सत, रज और तम। प्रत्येक मनुष्य के प्रत्येक कर्म में उपरोक्त गुणों में से एक या एक से अधिक गुण धर्म की प्रवृत्ति का बाहुल्य हो तो वह व्यक्ति उस गुण विशेष से प्रभावित माना जाता है। संचित कर्म के गुणधर्म का मानव के संस्कारों पर प्रभाव पड़ता है।

संस्कार—विचारकों की मान्यता है कि गत जन्म के एकत्रित कर्मों के गुणधर्मानुसार इस जन्म के संस्कारों की नींव पड़ती है—जो मूल संस्कार कहलाते हैं। इन संस्कारों में, पिता के प्राण मार्ग से आने के कारण एवं माता के गर्भ में नौ माह तक निवास करने के फलस्वरूप, माता-पिता के रक्त तथा वंशपरम्परागत संस्कारों का भी सम्मिश्रण हो जाता है। इसके पश्चात् जन्म के बाद परिवार, समाज एवं शिक्षा-दीक्षा आदि का भी मनुष्य के मूल एवं वंशपरम्परागत संस्कारों में समावेश हो जाता है और इस प्रकार मानव व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसी व्यक्तित्व पर मनुष्य का आचार-विचार, कार्यक्षमता, प्रवृत्ति एवं सफलता-विफलता आदि निर्भर करते हैं। गत जन्म के संचित कर्मों के अनुसार इस जन्म में आदतों के सम्बन्ध में डा० बनर्जी का अनुभव है कि—

'तथाकथित पुनर्जन्म की कुछ ऐसी घटनाएँ पायी गई हैं, जिनमें बालक अपने पूर्वजन्म के स्वभाव व शौक ज्यों का त्यों प्रदर्शित करते हैं। तुर्की के 'अदाना' नगर में इस्माइल नाम का लड़का अपने पहले जन्म की जो आदतें

बताता है, उसकी ठीक वैसी ही आदतें आज भी हैं। १९६२ में जब मैं वहाँ गया था तो वह सात-आठ वर्ष का था।'

उपरोक्त सभी तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दार्शनिकों ने प्रारब्ध या भाग्य का कर्म से अलग कोई अस्तित्व नहीं माना है। भाग्य वस्तुतः कर्म का ही एक स्वरूप है, कर्म से ही निर्मित है और कर्म से ही परिवर्तित भी है। अतएव वह कर्म के सामने पंगु है, लेकिन प्रश्न उठता है कि क्या गत जन्म के कर्मों से निर्मित भाग्य बदला जा सकता है। मेरे अपने अध्ययनानुसार इस जन्म के कर्मों से प्रारब्ध को परिवर्तित किया जा सकता है, क्योंकि आज हम जो कर्म कर रहे हैं उनके भी प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार होंगे। इनमें से परोक्ष तो अपने गुणधर्मानुसार भावी जन्म हेतु संचित होंगे; किन्तु प्रत्यक्ष कर्म मनुष्य के आत्मबल और गुणधर्मानुसार प्रारब्ध को सन्तुलित अथवा परिवर्तित कर सकते हैं। जैसे—तमोगुण से प्रभावित भाग्य को रजोगुण प्रत्यक्ष कर्म द्वारा सन्तुलित, रजोगुणी भाग्य को सतोगुण और अधिक शक्तिशाली एवं सतोगुण से युक्त भाग्य को सतोगुण कर्म से अत्यधिक उज्जवल बनाया जा सकता है।

सामुद्रिक शास्त्र की आवश्यकता—अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब कर्म ही सब कुछ है तो फिर सामुद्रिक शास्त्र का क्या उपयोग है ? इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अधिकांश व्यक्ति भाग्य को ही सर्वोपरि मानकर आपत्ति के समय निराश एवं अकर्मण्य हो जाते हैं तथा अपना आत्मबल खो देते हैं। ऐसे समय में सामुद्रिक शास्त्र उनके सर्वांग लक्षणों के आधार पर गत जन्म के संचित कर्मों के अनुरूप उनके संस्कारों का विश्लेषण कर वर्तमान कर्मों के द्वारा उनके भाग्य को सन्तुलित अथवा परिवर्तित करने के लिए उनका मार्गदर्शन कर, उनमें नवीन आशा और आत्मबल को जागृत कर, उन्हें पुनः कर्मण्य बना, जीवन-संघर्ष में सफल होने के लिए अग्रसर करता है।

यह कार्य अन्य शास्त्र भी करते हैं; पर उनके माध्यमों को जुटाने में कई कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। सामुद्रिक शास्त्र का माध्यम स्वयं सम्बन्धित व्यक्ति होता है; क्योंकि सर्वांग लक्षणों में से अधिकांश लक्षण जातक के संचित कर्म एवं संस्कारों की साक्षी स्वयं ही दे देते हैं। इसलिए यह

शास्त्र इस दिशा में एक सरलतम साधन है।

इस शास्त्र के अध्ययन से मनुष्य अपने भाग्य को अपने कर्मों द्वारा चाहे जैसे मोड़ सकता है।

सामुद्रिक शास्त्र क्या है ?

आदि काल से ही विभिन्न विज्ञानों के अन्तर्गत मानव-अंग-लक्षणों का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन होता आया है। सम्भवतः उन समस्त शास्त्रों के मानव-अंग-लक्षण सम्बन्धी परीक्षणों, अनुसन्धानों, अनुभवों एवं परिणामों के आधार पर ही बाद में 'अंग-लक्षण-शास्त्र' का निर्माण हुआ, जो कालान्तर में 'सामुद्रिक शास्त्र' के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। वर्तमान में इसी को अंग-विशेष के अध्ययन के फलस्वरूप क्रमशः तीन प्रमुख उपशाखाओं—मुखाकृति-विज्ञान, हस्तरेखा-विज्ञान एवं पद-लक्षण-विज्ञान के नाम से पुकारा जाता है।

परिभाषा—सामुद्रिक शास्त्र एक विस्तृत एवं गम्भीर शास्त्र है। नपे-तुले शब्दों में इसकी परिभाषा करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। कई अधिकृत विद्वानों ने इसकी परिभाषा को निम्नानुसार प्रकट किया है। भारतीय आचार्य वाराहमिहिर का कथन है कि—

"उन्मान मान गति संहति सार वर्ण।
स्नेह स्वर प्रकृति सत्व मनूक मादै ॥
क्षेत्र मृजां च विधिवत् कुशलोवलोक्य।
सामुद्र विद्वदति यात मना गतं वा ॥"

भावार्थ—सामुद्रिक शास्त्र में मानव शरीर की ऊँचाई, भार, चाल, सन्धि, सार, रंग, स्निग्धता, स्वर, प्रकृति, सत्व, आकृति, क्षेत्र एवं कान्ति आदि का विधिवत् अध्ययन किया जाता है।

सामुद्रिक के उपरोक्त तेरह प्रमुख तत्वों में अन्य विद्वानों ने एक ओर तत्व गन्ध का समावेश भी किया है। इस प्रकार अब आन्तरिक एवं बाह्य मुख्य रूप से यह चौदह तत्व माने जाते हैं।

उपरोक्त भारतीय तत्वों में से अधिकांश बाह्य तत्वों को ही पाश्चात्य सामुद्रिकविदों ने भी महत्ता प्रदान की है। प्रसिद्ध आधुनिक सामुद्रिकाचार्य लेवेटर (Lavater) का कथन है—"सामुद्रिक शास्त्र वह कला अथवा विज्ञान है, जिसमें मानव की मुखाकृति या सम्पूर्ण शरीराकृति के, विशेषकर बाह्य चिह्नों या लक्षणों के संयोगों से, उसके व्यक्तित्व की प्रधान चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।" इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि—

"कला विज्ञान युक्ते च सामुद्रिके महोदधौ।
चतुर्दश तत्वादि तथ्यानामभ्यासेन पुनर्पुनः॥
ग्रह शैलोद्गति चिह्नान रेखाणि च विशेषतो।
सर्वकालं विप्रदति गोचरं च न संशयः॥"

अर्थात्—सामुद्रिक शास्त्र वह कला एवं विज्ञान है, जिसमें मानव शरीर के प्रमुख चौदह तत्त्वों की पृष्ठभूमि में ग्रहपर्वतों, रेखाओं (विशेष) एवं अन्य छोटे-बड़े चिह्नों के सांकेतिक लक्षणों के आधार पर उसके जीवन के सभी कालों का अध्ययन किया जाता है।

विषय सामग्री—जैसा कि उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है, मानव की अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष सम्बन्धी क्रियाओं तथा उनमें उसकी सफलताओं या विफलताओं की सम्भावनाओं का, उसके सर्वांग लक्षणों की मौन भाषा के माध्यम से विवेचन करना ही इस शास्त्र की विषय सामग्री है।

यह विज्ञान है या कला—प्रकृति के किसी भी विभाग से सम्बन्धित क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। इस शास्त्र में भी प्रकृति के एक विभाग, शरीर के क्रमबद्ध लक्षण-ज्ञान के आधार पर मानव के कार्य, कारण एवं परिणाम आदि का बड़ी सतर्कतापूर्वक अध्ययन किया जाता है, अतः यह विज्ञान है। अतः क्रमबद्ध विज्ञान के क्रमबद्ध उपयोग का ही दूसरा नाम कला है। कला, कर्म के स्वरूप में 'जो है' एवं 'जो होना चाहिए' को जोड़ती है। यह शास्त्र की, सर्वांग लक्षणों के माध्यम से, भावी सम्भावनाओं को

व्यक्त कर, पुरुषार्थ द्वारा प्रारब्ध पर विजय पाने की प्रेरणा देकर उक्त कार्य की पूर्ति करता है, अतः यह कला भी है। कुल मिलाकर विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामुद्रिक शास्त्र एक आदर्श विज्ञान एवं एक उपयोगी कला भी है।

अध्ययन प्रणाली—आदि युग से ही अन्य शास्त्रों की तरह इस शास्त्र के अध्ययन की भी दो प्रणालियाँ रही हैं। (१) अनुमान प्रणाली एवं (२) अनुभव प्रणाली। प्रथम प्रणाली के अनुसार जहाँ एक ज्ञान से दूसरा ज्ञान प्राप्त कर सामान्य से विशेष की ओर जाया जाता है, वहाँ द्वितीय प्रणाली के अनुसार परीक्षण से परिणाम पर पहुँचकर, विशेष से सामान्य की ओर जाया जाता है। दोनों ही प्रणालियाँ शास्त्र के सम्पूर्ण अध्ययनार्थ आवश्यक हैं।

अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध—चिरकाल से ही विभिन्न दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों ने इस शास्त्र को अपने-अपने विषय का सहयोग प्रदान किया है। परिणामस्वरूप आज जब हम इस शास्त्र की गहराई में पैठते हैं तो प्रतीत होता है कि इस शास्त्र का अन्य कई शास्त्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रमुख रूप से सामुद्रिक शास्त्र और ज्योतिष-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, मनोविज्ञान, कामविज्ञान, गणित एवं दर्शनशास्त्र आदि का आपस में अत्यंत निकट सम्बन्ध है।

स्व सम्बन्ध—इसके साथ यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि इस शास्त्र की तीनों प्रमुख शाखाओं—मुखाकृति, हस्तरेखा एवं पद-लक्षण-शास्त्र आदि का आपस में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। लक्षण संकेतों को स्पष्ट करने में उपरोक्त तीनों शाखाएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं। अतः सत्य के निकट पहुँचने के लिए तीनों विभागों का सहयोग लेना अधिक उपयुक्त होता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—यह एक सर्वसम्मत तथ्य है कि विश्व में सर्वप्रथम, ईसा से हजारों वर्ष पूर्व भारत में सामुद्रिक शास्त्र का जन्म हो चुका था। सामुद्रिक शास्त्र के प्रमुख प्रवर्तकों की श्रृंखला में निम्न महर्षियों, दार्शनिकों, विचारकों एवं वैज्ञानिकों के नाम अग्रगण्य हैं :

(१) आदिकवि वाल्मीकि—(काल विवादास्पद)

(२) महर्षि वेदव्यास—(पाण्डव युग)
(३) पाराशर—(ई० पू० नवीं से सातवीं सदी)
(४) समुद्रेण—(ई० पू० चौथी सदी)
(५) हिपोक्रेट्स—(ई० पू० चौथी सदी)
(६) एनक्सागोरस—(ई० पू० चौथी सदी)
(७) वाराहमिहिराचार्य—(५०५-५८७ ईसवी)
(८) भोजराज—(१०४० ईसवी)
(९) अलबर्टस् मंगनस—(१२०५-१२८० ईसवी)
(१०) एग्रीपा कार्नेलियस—(१४८६-१५३५ ईसवी)
(११) वीरसिंह—(१५७६ ईसवी)
(१२) माधवगाँवकर—(१६८० ईसवी)
(१३) डॉफ्रेज जोसफ गाल—(१७५८-१८२८ ईसवी)
(१४) ए० ए० डेसबरोलियस—(१८०१-१८८६ ईसवी)
(१५) लेवेटर—(१८०१ ईसवी)
(१६) स्पुरजेम—(१८१४ ईसवी)
(१७) रामन क्रिस्टो चटर्जी—(१८८४ ईसवी)
(१८) कामटे डी सेन्ट जर्मन—(१८४६-१८९८ ईसवी)
(१९) जान ई० बार्नर 'कीरो'—(१८८६-१९३६ ईसवी)
(२०) विलियम जी० बेन्हम—(१९०० ईसवी)
(२१) डॉ० आर० जी० वेटरबेट—(१९५० ईसवी)

उपरोक्त प्रमुख आचार्यों के अतिरिक्त अत्रि, गाल्व, भृगु, कश्यप, गर्ग, गौतम, वैशम्पायन, छागलेय, कात्यायन, मूर्य, नारद, स्वामिकार्तिक, सुमंत, अरस्तू, प्लेटो, गेलन, एडमंथस, मेलंनपास, प्लिनी, एविस, केम्पर, बिचेट, ब्रोसाइस, बेल, वाकर, कुक, स्टोखे, स्टेन्टोन, फ्लोएर, कोट्स, बिगिन्स, लोमेक्स एवं स्टाकर आदि भारतीय, यूनानी, मिश्री, रोमन, जर्मन एवं फ्रांसीसी आदि विद्वानों को भी नहीं भुलाया जा सकता।

उद्देश्य—मानव को उसके अंगलक्षणानुसार, भावी शुभाशुभ सम्भावनाओं से अवगत कर, उसे कर्मठता एवं सतर्कतापूर्वक आगे बढ़ने का मार्गदर्शन देते हुए उसके उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करना ही सामुद्रिक

विज्ञान का एकमात्र लक्षण एवं उद्देश्य है।

पूर्व निर्देश—विषय प्रवेश से पूर्व पाठकों से अनुरोध है कि इस विषय के आधार पर किसी भी जातक के सम्बन्ध में कोई निर्णय लेने से पूर्व कतिपय निम्न बातों का यदि ध्यान रखेंगे तो उन्हें अपने कार्य में अधिक सफलता प्राप्त होगी।

कभी भी किसी व्यक्ति की मुखाकृति देखकर किसी एक ही लक्षण के आधार पर तुरन्त कोई निर्णय मत लीजिए, क्योंकि चेहरे का कोई एक लक्षण सम्पूर्ण जीवन की प्रवृत्तियों का प्रतीक नहीं होता अतः विभिन्न शुभाशुभ लक्षणों के अनुपात से परिमाण योगों का अनुमान करने के पश्चात् उनके संयोग एवं सन्तुलन आदि के आधार पर ही अन्तिम निर्णय पर पहुँचना उचित रहता है।

जातक के किसी भी अशुभ लक्षण को देखकर अचानक स्वयं भी मत चौंकिए और न ही जातक को चौंकाइए। यदि आवश्यक हो तो उस लक्षण के सम्भावित फल को कुछ इस प्रकार स्पष्ट कीजिए कि मनोवैज्ञानिक रूप से जातक पर उसका कोई अशुभ प्रभाव न पड़े। जहाँ तक सम्भव हो जातक की मुखाकृति का दिन के सामान्य तापमान में एवं सामान्य वातावरण में, शान्ति एवं धैर्य के साथ अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण कीजिए, अन्यथा असामान्य परिस्थितियों में किया गया आपका अध्ययन सत्य से कोसों दूर चला जाएगा। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि विषय की किसी एक पुस्तक को पढ़ लेने भर से अपने आपको अधिकृत तथा पूर्ण विद्वान समझने की भूल कभी मत कीजिए, अपितु परिपक्वता हेतु विभिन्न विद्वानों की उच्चस्तरीय पुस्तकों का अध्ययन, मनन एवं चिन्तन करना अधिक उपयोगी एवं श्रेयस्कर रहेगा।

मुखाकृति के तत्त्व

किसी भी व्यक्ति से भेंट होते ही यदि आप उसके चेहरे पर एक दृष्टि डालें तो मुखाकृति के—अनूक, उन्मान, कान्ति, गति, गन्ध, प्रकृति, मान, वर्ण, सत्व, स्नेह, संहति, सार, स्वर एवं क्षेत्र आदि चौदह आन्तरिक एवं बाह्य तत्त्वों में से अधिकांश आपके सम्मुख उसके व्यक्तित्व की झांकी स्पष्ट कर देंगे। अतः चेहरे के मानचित्र को पढ़ने के लिए हम सबसे पहले मुखाकृति-विज्ञान के सन्दर्भ में सामुद्रिक विज्ञान के उपरोक्त मूलतत्त्वों का ही अध्ययन करेंगे।

इसके पूर्व कि हम उक्त मूल तत्त्वों का क्रम प्रारम्भ करें, यह समझ लेना आवश्यक है कि प्राचीन विश्वास के अनुसार सृष्टि निर्माता ने अपनी एक निश्चित योजना के अन्तर्गत, जड़ अथवा चेतन वस्तुओं का निर्माण, प्रत्येक वर्ग के अन्दर सात प्रकार के हिसाब से किया। आज भी प्राचीन साहित्य में सप्तसागर, सप्तग्रह, सप्तसमिधा, सप्तऋषि, सप्तलोक, सप्त-अग्निजिह्वा, सप्तमहाद्वीप एवं सप्तपद आदि शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। आधुनिक वैज्ञानिकों एवं पुरातत्त्वविदों का अनुमान है कि उपरोक्त सप्त योजना के अन्तर्गत प्रारम्भ में सात विशिष्ट प्रकार के मानवों का भी निर्माण किया गया होगा। सम्भव है वैदिक साहित्य का 'सप्तऋषि' शब्द इन्हीं सात विशिष्ट मानवों का परिचायक हो। जो भी हो विद्वानों का कथन है कि आदि सप्तमानव जोड़ों में प्रत्येक की अपनी एक अलग विशेषता रही होगी, यह विशेषताएँ केवल उनके शरीर एवं स्वास्थ्य तक ही सीमित नहीं होंगी, अपितु उसी के अनुरूप उनकी बुद्धि, स्वभाव एवं चरित्र भी होगा।

वैज्ञानिक अनुसन्धानों से सिद्ध होता है कि उक्त विभिन्न सप्त प्रकार

सृष्टि को गतिशील रखने हेतु आवश्यक थे। यदि मानवता का एक ही प्रकार होता तो सृष्टि अभी तक कभी की समाप्त हो गई होती, क्योंकि किसी भी क्रिया-प्रक्रिया को एक ही वर्ग विशेष अधिक समय तक गति प्रदान नहीं कर सकता। आज भी आप देखते हैं कि विश्व में कहीं भी एक ही माता-पिता की दो नर और मादा सन्तानों का आपस में विवाह नहीं किया जाता। पशुओं में भी नस्ल सुधार करने का सिद्धान्त अपने मूल रूप में इसी आधार पर निर्मित है। इसीलिए वैदिक महर्षियों ने विवाह से दीर्घायु, सच्चरित्र एवं सौम्य सन्तान उत्पन्न करने हेतु, उत्तम नस्ल के उत्तम वर-वधू का चयन करना आवश्यक माना और इसी के अनुसार उन्होंने क्रमशः विभिन्न विवाहों के ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्रजापात्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस एवं पैशाच आदि नाम दिए हैं।

दूसरी ओर यह एक स्वयंसिद्ध बात है कि प्रत्येक वस्तु के निर्माण में मूल रूप से क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि पाँच मूल-भूत तत्त्वों का न्यूनाधिक मात्रा में स्थूल एवं सूक्ष्म रूप में संयोग होता है। उपरोक्त आदि सप्त मानवों में भी इसी आधार पर पाँच मूल तत्त्रों का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश कर निर्माण किया होगा, जिसकी क्रिया-प्रक्रिया से मानवता की उत्पत्ति हो रही है और होती रहेगी। इसीलिए भारतीय ज्योतिर्विज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न ग्रहों से प्रभावित मनुष्यों को उनके सर्वांग लक्षणों के अनुरूप प्रमुखतः क्रमशः हंस संज्ञक, मालव्य संज्ञक, शश संज्ञक, भद्र संज्ञक एवं रुचक संज्ञक आदि नामों से विभाजित किया गया है जिनके स्वभाव, चरित्र, कार्यक्षमता, बुद्धि, रंगरूप, शरीर-स्वास्थ्य एवं मुखाकृति में पर्याप्त अन्तर होता है। वास्तव में उपरोक्त पंच महापुरुषों के शरीर में उपरोक्त पाँच मूल तत्त्वों का अनुपात भी अलग-अलग ही होता है। इसी प्रकार कामशास्त्र में भी स्त्री-पुरुषों के विभिन्न प्रकार बतलाये गए हैं, जिनके स्वभाव, रुचि एवं चरित्र आदि में भी विभिन्नताएँ होती हैं। आइए, अब हम मुख सामुद्रिक के तत्त्वों का अध्ययन प्रारम्भ करें।

अनूक (आकृति)

सामुद्रिक शास्त्र में 'सस्थान तत्त्व' का बड़ा महत्त्व है, जिसका अर्थ होता है 'आकार'। इस तत्त्व से एक दृष्टि में सम्पूर्ण शरीराकृति को आंक लिया जाता है। यह संस्थान तत्त्व पदलक्षण विज्ञान में पादाकृति, हस्तरेखा विज्ञान में करतलाकृति एवं मुखाकृति-विज्ञान में अनूक या मुखाकृति तत्त्व के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

मुखाकृति-विज्ञान में अनूक या आकृति का परीक्षण जातक के सम्मुख चेहरे से, अर्थात् एक कान से दूसरे कान तक एवं गर्दन से केश पर्यन्त आकार के अनुसार किया जाता है। इस विज्ञान की क्रमशः प्रगति के अनुसार अनूक का परीक्षण करने की प्रमुख तीन प्रणालियाँ हैं—प्रथम मूल तत्त्वाकृति प्रणाली, द्वितीय ज्यामितिक प्रणाली एवं तृतीय तुलनात्मक प्रणाली। हम उपरोक्त तीनों ही प्रणालियों के आधार पर क्रम से अनूक तत्त्व का अध्ययन करेंगे।

मूल तत्त्व आकृतियाँ—एक कहावत है कि वृद्धावस्था में मनुष्य की वही आकृति हो जाती है जिसका कि वह पात्र होता है। ठीक उसी प्रकार सामुद्रिक शास्त्र उससे आगे बढ़कर, भारतीय दर्शन के आधार पर कहता है कि गत जन्म के संचित कर्मों के संस्कार के अनुसार, मनुष्य इस जन्म में वही अनूक पाता है जिसका कि वह अधिकारी होता है।

उक्त दार्शनिक मान्यता के अनुसार मूल तत्त्वाकृति पांच मूल तत्त्वों में विभक्त की गई है, जो निम्न प्रकार हैं—

(१) पृथ्वी तत्त्व प्रधान—इस तत्त्व से प्रभावित व्यक्ति का चेहरा वर्गाकार होता है। यदि आप इस प्रकार की मुखाकृति का फोटो लें और उस पर वर्ग खींचें तो आपको प्रतीत होगा कि चेहरा ऊपर, नीचे, दायें, बायें

उस चतुष्कोण में लगभग सैट हो जायेगा। इस प्रकार की आकृति को अंग्रेजी में Motive Type कहते हैं। आकृति—अ। यह मुखाकृति मानव के व्यक्तित्व में पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता का संकेत देती है। ऐसे व्यक्तियों में अस्थि सार की प्रधानता होती है। उनके प्रत्येक जोड़ सुदृढ़, लम्बे एवं सुडौल होते हैं। इनके हाथ एव पैरों की अस्थियां लम्बी तथा ठोड़ी कुछ ऊपर उठी हुई एवं ललाट का नेत्रों से ऊपर वाला भाग प्रभावशाली होता है।

ऐसे जातक स्वस्थ, सुडौल एवं शक्तिसम्पन्न होते हैं। इनमें व्यावहारिकता, उद्योगशीलता एवं संचय प्रवृत्ति आदि गुण विशेष रूप से देखे जा सकते हैं। उनके जीवन में अपने कुछ सिद्धान्त होते हैं तथा उन्हीं के अनुसार वह काम करते हैं। प्रायः ऐसे व्यक्ति, भौतिक साधनों से सम्पन्न, सुखी और समृद्ध होते हैं। यह लोग अपने विचारों पर दृढ़ होते हैं और सामान्यतया इनके विचारों को आसानी से नहीं बदला जा सकता।

यदि चेहरे पर पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता सामान्य से कुछ अधिक हो तो जातक में रजोगुण के अनुपात से अपने संस्कारों में तमोगुण की प्रबलता होती है, फलस्वरूप उसके स्वभाव एवं चरित्र में मन्थर गति, दीर्घसूत्रता, हठवादिता, आलस्य, विलासिता, अदूरदर्शिता एवं मूर्खता आदि का समावेश हो जाता है। ऐसे जातक जीवन संघर्ष में पिछड़ जाते हैं तथा अपनी अकर्मण्यता के कारण अपने जीवन को दुःखी बना कर विभिन्न प्रकार के कष्ट भोगते रहते हैं।

स्त्री विशेष फल—सामान्य पृथ्वी तत्त्व प्रधान मुखाकृति वाली स्त्रियां शरीर से स्थूल होती हैं। इनकी

अ
पृथ्वी
ब
जल
स
अग्नि
द
वायु
इ
आकाश

चित्र-१

चाल मन्थर गति से युक्त, मतवाली कहलाती है। यह पिता की अपेक्षा श्रेष्ठ पति गृह में जाती हैं। यह बहुभोजी, किन्तु कर्मठ, व्यवहारकुशल एवं संग्रहात्मक प्रवृत्ति की होती हैं। पृथ्वी तत्त्व की सामान्य से अधिकता इन्हें हस्तिनी के लक्षणों से युक्त कर स्वभाव एवं चरित्र से दुर्बल कर देती है।

(२) जल तत्त्व प्रधान—इस तत्त्व के प्रभावित मुखाकृति वृत्ताकार होती है, जिसे जनसाधारण गोल चेहरे के नाम से जानते हैं। इस आकृति का चित्र एक गोले के अन्दर लगभग सैट हो जाता है। ऐसे चेहरे पर एक दृष्टि डालते ही प्रतीत होता है जैसे एक आवृत्त हो। इसे अंग्रेजी में Vital Type कहते हैं। देखिए चित्र-१, आकृति—ब। यह मुखाकृति मानव व्यष्टि-तत्त्व में जल तत्त्व की प्रधानता की द्योतक होती है। ऐसे व्यक्तियों में मांस सार की प्राबल्यता होती है। इनके गाल भरे हुए, मांसल एवं स्निग्ध होते हैं। इनका शरीर स्थूल एवं उदर लम्बा होता है। प्रायः इनके चेहरे पर एक जलीय आभा दृष्टिगोचर होती है।

ऐसे जातक प्रसन्नचित्त, समाजप्रिय, चंचल प्रवृत्ति, सौन्दर्यप्रेमी एवं मनोरंजन के बहुत शौकीन होते हैं। यह सरल जीवन प्रणाली के इच्छुक एवं संघर्ष से सदैव दूर रहना ही पसन्द करते हैं। प्रायः हृदयप्रधान होने के कारण ऐसे जातक भावुक एवं प्रकृति की गोद में निवास करना चाहते हैं। इनका सौन्दर्यबोध भी विकसित होता है। यह स्वस्थ, कल्पनाशील, सहृदय, स्वप्नदर्शी एवं संवेदनशील होते हैं। वे कई भाषाओं को पढ़ने में रुचि रखने वाले, काव्यप्रेमी, चित्रकार या संगीतज्ञ हो सकते हैं। अक्सर इनकी प्रवृत्ति में नैराश्य का पुट होता है। इनके विचारों में चट्टान-सी दृढ़ता की अपेक्षा लहरों-सी चंचलता ही अधिक होती है। यह लोग उपेक्षा या व्यंग्य को सहन करने की क्षमता नहीं रखते।

यदि चेहरे पर जल तत्त्व का अत्यधिक प्रभाव हो तो इनके स्वभाव में चंचलता, निराशा एवं अकर्मण्यता आदि दुर्गुण अस्वाभाविक रूप से वृद्धि पा सकते हैं। ऐसी स्थिति में जातक निराशा के कारण अपना संतुलन तक खो सकते हैं। प्रायः ऐसे जातक प्रणय या कला के क्षेत्र में असफल होते ही अपने जीवन का अन्त करने का प्रयास करते हैं, किन्तु यदि ऐसे समय में उन्हें थोड़ी-सी भी सहानुभूति प्राप्त हो जाय तो वह पुनः अपने विचारों

को बदल देते हैं।

स्त्री विशेष फल—जल तत्त्व से प्रभावित स्त्रियाँ प्रायः अद्भुत चरित्रों का निर्माण करने वाली, मधुर षड्रसों की प्रेमी, हाव-भाव एवं शृंगार-प्रिय, बुद्धिमती एवं विदुषी होती हैं। वह अपने स्वजनों एवं प्रियतम में विशुद्ध प्रेम करने वाली और पतिव्रता होती हैं। वह अत्यधिक उदार हृदय, दयालु, स्नेही तथा चंचल भी होती हैं लेकिन अत्यधिक जलतत्त्व की उपस्थिति में वे दुर्बल, खिन्न, निराश एवं रोगग्रस्त हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में उनमें चित्रिणी के लक्षण प्रतीत होते हैं।

(३) अग्नि तत्त्व प्रधान—इस तत्त्व से प्रभावित मुखड़ा सूच्याकार होता है, अर्थात् इसको यदि एक चतुष्कोण में सैट किया जाय तो वह वर्ग ऊपर मस्तक की तरफ चौड़ा एवं नीचे ठोड़ी की ओर सँकरा होगा। इस प्रकार के चेहरे में चारों ओर गोलाई का अभाव होता है। यह एक दृष्टि में बाल्टी की आकृति से लगभग मिलता-जुलता होता है चित्र-१, आकृति-स। मानव-स्वभाव एवं चरित्र में यह मुखाकृति अग्नि तत्व की प्रधानता का ही परिचय देती है। जैसा कि तत्त्व के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है, यह क्रोध की मूर्ति का प्रतीक होता है। ऐसे व्यक्ति अक्सर दुबले-पतले तथा लम्बे मुंह वाले, तेज, रक्तिम नेत्रों से युक्त, चपल एवं तीव्र गतिवान होते हैं। यह प्रायः ऊपर देखकर चलने वाले होते हैं।

इसकी मुखाकृति का ऊपरी भाग विस्तृत होने के कारण यह जिज्ञासु, बुद्धिमान, ज्ञानी, चिन्तक, साहसी, दूरदर्शी, विचारक, स्वस्थ एवं समृद्ध होते हैं। इनकी स्मरणशक्ति तीव्र रहती है। साथ ही यह लोग प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कस कर देखते हैं। छोटी-मोटी अवैज्ञानिक बातों पर यह ध्यान नहीं देते। वे वीरोचित कार्यों के समर्थक एवं प्रशंसक होते हैं। युद्ध, चाहे वह बौद्धिक हो या शारीरिक, यह उससे कभी भी पीछे नहीं हटते। स्पष्टवक्ता, अभिमानी, नेतृत्वप्रिय, हठी एवं जीवट वाले होते हैं। ऐसे लोग शक्ति के उपासक होते हैं और शक्ति को ही जीवन का केन्द्र मानते हैं। स्थिति के अनुसार वह रचनात्मक एवं ध्वंसात्मक दोनों ही प्रकार की शक्ति का उपयोग करते हैं। यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि ऊपरी भाग जितना चौड़ा होगा जातक में रचनात्मक प्रवृत्ति भी उतनी ही

अधिक होगी वहाँ यह भी स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि निचला भाग जितना संकुचित होगा, ध्वंसात्मक स्वभाव उतना ही अधिक विकसित होगा।

यदि मुखाकृति का निचला भाग ऊपरी भाग की अपेक्षा तुलनात्मक रूप से अधिक सँकरा हो तथा अग्नि तत्त्व का निम्न भाग पर अत्यधिक प्रभाव हो तो ऐसे जातक में प्रचण्ड क्रोध, हिंसात्मकता, रक्तपिपासा एवं पाशविक वृत्ति का बाहुल्य होगा। यह लोग अविकसित बुद्धि के प्रतीक, क्रोध की मूर्ति एवं विनाश के अवतार होते हैं। इनका झुकाव प्रायः अपराधी जगत की ओर हो जाता है तथा यह सदैव अपना और समाज का विनाश करने की ओर ही अग्रसर होते हैं।

स्त्री विशेष फल—सामान्यतया अग्नि तत्त्व से प्रभावित स्त्रियों को विवाह करना उचित नहीं होता। इसके स्थान पर यदि वह राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करें तो जीवन में अधिक सफल होती हैं, क्योंकि इस तत्त्व के प्रभाव के कारण वे गृहस्थी में होने वाली छोटी-मोटी नोंक-झोंक तक को भी सहन नहीं कर पातीं, जिसके परिणामस्वरूप कलह का सूत्रपात कर बैठती हैं। यह प्रायः रक्तवर्ण वस्तुओं में रुचि रखती हैं। यह स्वाधीनता-प्रिय, असहिष्णु, वाचाल, मादक द्रव्य सेवी एवं चपल होती हैं। इनके लक्षणों में शंखिणी के गुणों का प्राबल्य होता है।

वायु तत्त्व प्रधान—विचारकों की मान्यतानुसार इस तत्त्व की आकृति अण्डाकार होती है अर्थात यह आकार भी ऊपर की ओर विस्तृत एवं नीचे की ओर संकुचित होता है, किन्तु इसमें चारों ही तरफ हल्की-सी गोलाई होती है। ऐसे जातक सामान्य ऊँचाई के, पुष्ट शरीरयुक्त तथा उभरे एवं स्निग्ध गालों वाले होते हैं। चित्र १, आकृति—८। इस प्रकार की आकृति वाले लोगों में वायु तत्त्व की प्रधानता होती है। यह बड़े आकर्षक, लुभावने एवं सुन्दर दिखाई पड़ते हैं। इनका ललाट उन्नत एवं विशाल तथा हनु और कपोल एक विशेष प्रकार से चूडी उतार होते हैं। सम्पूर्ण मुखाकृति को एक दृष्टि से देखें तो वह चारों ओर से उभरी हुई और मांसल-सी प्रतीत होती है, किन्तु यह मांसलता वर्गाकार एव वृत्ताकार मुख की अपेक्षा कुछ कम होती है।

ऐसे जातक के चरित्र में एक स्फूर्ति, उत्साह, स्वच्छन्दता, तर्कप्रवी-

णता एवं आशात्मक प्रवृत्ति होती है। इनके ऊपरी भाग का विकास बुद्धि की विकसितता, ज्ञान की जिज्ञासा, आनन्द की खोज, शान्ति की चाह एवं प्रगति की राह का संकेत देता है, किन्तु निम्न भाग की पुष्टता प्रेम और सौन्दर्य की इच्छा, यौन-पिपासा, क्षुधातीव्रता एवं विचरण की कामना का संकेत भी देती है। उक्त दोनों विभागों के संयोग से इनके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अतएव इस प्रकार की आकृति वाले जातक का व्यक्तित्व निर्धारण करने से पूर्व सूक्ष्म निरीक्षण करना अधिक उपयुक्त होता है, क्योंकि यह लोग कभी स्थिर और कभी अस्थिर, कभी सौम्य और कभी उच्छृंखल, कभी बुद्धियुक्त और कभी मूर्खतापूर्ण एवं कभी आशावादी तो कभी निराशावादी हो सकते हैं। यदि ऐसे चेहरे में निम्न भाग विस्तृत एवं ऊपरी भाग संकुचित अर्थात् उल्टे अण्डे की तरह दिखाई पड़े तो व्यक्ति में बुद्धि विकास की गहराई नहीं होगी जो सामान्यतः होनी चाहिए। ऐसा जातक हास्य एवं व्यंग्यप्रिय, मनमौजी, उथले स्वभाव का एवं पर्यटन-प्रेमी हो सकता है। इन लोगों की एक सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि यह प्रायः प्रत्येक बात की जानकारी रखने में प्रवीण होते हैं।

ऊपरी भाग को छोड़कर निचले भाग में इस तत्त्व की प्रधानता से व्यक्ति में दुर्गुणों का समावेश हो जाता है। अत्यधिक प्रभाव के कारण यौन-आकर्षण, असत्यवादिता, कुतर्कता, अस्वस्थता एवं चिड़चिड़ेपन की प्रकृति का प्रादुर्भाव हो जाता है।

स्त्री विशेष फल—इस तत्त्व से सामान्य रूप से प्रभावित स्त्री गृहस्थी के लिए उपयुक्त होती है, क्योंकि वह न तो इतनी बुद्धि-सम्पन्न होती है कि अहं की पराकाष्ठा पर पहुँच जाय और न ही इतनी मूर्ख होती है कि उसे जीवन के प्रत्येक मोड़ पर गुमराह किया जा सके। वह समय पर रुष्ट और तुष्ट दोनों ही हो सकती है। तात्पर्य यह है कि इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली स्त्रियाँ प्रायः सामान्य होती हैं, थोड़े प्रयत्न से अच्छी जीवन-साथी सिद्ध हो सकती हैं।

(५) आकाश तत्त्व प्रधान—भारतीय आचार्यों ने इस तत्त्व की आकृति अधोमुख कुम्भक अर्थात उल्टे घड़े के सदृश्य बताई है। इस आकृति को गर्दन सहित यदि एक दृष्टि से परखें तो प्रतीत होगा कि शरीर के धड़ पर

मस्तक के रूप में एक उल्टा घड़ा रखा है। जिस आकृति में कान से ऊपर का मस्तक भाग अत्यधिक विस्तृत होता है उसे अंग्रेजी में Pure Mental Type कहते हैं। चित्र-१, आकृति-ड। यह आकृति विशुद्ध रूप से सतोगुण की परिचायक होती है। ऐसे जातक चाहे लम्बे हों या छोटे, दुबले हों या मोटे, किन्तु उनके सम्पूर्ण शरीर में मस्तक अत्यन्त प्रधान एवं महत्वपूर्ण होता है। भारतीय विचारकों के अनुसार ऐसे जातक प्रायः स्थूलकाय नहीं होते। इनकी मुखाकृति पर एक अद्‌भुत कान्ति एवं नेत्रों में एक विचित्र तेज होता है। ऐसे जातक प्रायः हर क्षेत्र में उच्चस्तरीय होते हैं। ऐसे लोगों में यदि मांसलता एवं स्निग्धता हो तो उनमें सतोगुण के साथ रजोगुण का प्रभाव निश्चित होता है। रजोगुणयुक्त इस आकृति वाले जातक धर्मगुरु, उच्च राजनेता या महान साहित्यकार होते हैं। इनमें नेतृत्व और संचालन की विशेष प्रवृत्ति भी होती है। इन्हें निश्चित रूप से समाज का आदर और श्रद्धा प्राप्त होती है। यह लोग उदारहृदय, दयालु, महत्वाकांक्षी, आत्मगरिमा-सम्पन्न एवं आदर्शयुक्त होते हैं। इनकी भावनाएँ शब्दों तक ही सीमित न रहकर व्यवहार का मूर्त रूप धारण करती हैं।

विशुद्ध रूप से सतोगुणयुक्त इस प्रकार की आकृति वाले जातक वैज्ञानिक, दार्शनिक या महात्मा होते हैं। वे प्रायः एकान्तप्रिय, सौम्य, तेजस्वी, आध्यात्मवादी, ईश्वरोपासक, गूढ़तत्वज्ञ तथा आत्मबली एवं असामान्य प्रकृति के होते हैं। उनका जीवन-दर्शन, सिद्धान्त, आस्था एवं विश्वास सामान्य से परे होता है, किन्तु उनका लक्ष्य एवं उद्‌देश्य बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय रहता है।

स्त्री विशेष फल—विशुद्ध रूप से सतोगुणयुक्त इस प्रकार की स्त्रियाँ प्रायः न्यून ही होती हैं, यदि होती हैं तो उनमें तत्व-ज्ञान एवं आध्यात्मवाद की प्रवृत्ति पूर्णरूपेण पायी जाती है। ऐसी स्त्रियाँ विवाह आदि ऊर गृहस्थी के पचड़ों में नहीं पड़तीं लेकिन इसके विपरीत यदि उनमें सत के साथ रजोगुण का सम्मिश्रण हो तो उनके मुख पर कुछ मांसलतायुक्त स्निग्धता, मृदुवाणी, चन्द्र कान्ति, लज्जा एवं मान आदि के गुण पाये जाते हैं। ऐसी स्त्रियाँ सुशील, धर्मपरायण, पतिव्रता, कर्मठ, समृद्ध, ईश्वर-भक्त, सेवाभावी, सौभाग्यवती एवं लक्ष्मीरूपा होती हैं। इनमें पद्मिनी के गुणों का

प्राबल्य होता है। उपरोक्त तत्वाकृतियों के तत्वगुणानुसार दो व्यक्तियों के आपसी सम्बन्ध निम्नानुसार सम्भावित हैं—

(१) मैत्री सम्बन्ध : (अ) पृथ्वीतत्व प्रधान + जलतत्व प्रधान
(ब) अग्नितत्व प्रधान + वायुतत्व प्रधान

(२) अमैत्री सम्बन्ध : (अ) पृथ्वीतत्व प्रधान + अग्नितत्व प्रधान
(ब) जलतत्व प्रधान + अग्नितत्व प्रधान
(स) जलतत्व प्रधान + वायुतत्व प्रधान

सही जन्म समयानुसार व्यक्ति की नाम-राशियों से तत्वों की प्रधानता निम्नानुसार होती है—

तत्व	राशि
(१) पृथ्वी	वृष, कर्क, कन्या और मकर
(२) जल	वृश्चिक और मीन
(३) अग्नि	मेष, सिंह और धनु
(४) वायु	मिथुन, तुला और कुम्भ
(५) आकाश	सब में रहकर भी सबसे विलग

ज्यामितिक आकृतियाँ—वैसे तो मूलतत्वाकृतियों में से अधिकांश आकृतियाँ भी ज्यामितिक ही हैं, किन्तु प्राचीन मान्यताओं के आधार पर उनका वर्णन अलग से किया गया है। अब उनके अतिरिक्त अन्य शेष आकृतियों का अध्ययन करेंगे। पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि प्राचीन मूलतत्वाकृतियों में वर्णित वर्गाकृति, वृत्ताकृति, सूच्याकृति एवं अण्डाकृति आदि के फल में आधुनिक ज्यामितिक दृष्टि से भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। आधुनिक विद्वान भी उनका समर्थन ही करते हैं। आधुनिक सामुद्रिकाचार्यों का कथन है कि एक परिपूर्ण मुखाकृति में कोई कोण, कोई उठाव (फूलापन) एवं कोई गढ़ा नहीं होता। यह आस-पास से चपटी एवं नाशपाती के समान होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह चारों ओर से सुन्दर, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक होनी चाहिए।

एक सामान्य मुखाकृति की चोड़ाई उसकी लम्बाई से दो तिहाई होती है। ऐसे चेहरे पर कान की स्थिति इस प्रकार होती है कि यदि नेत्र, ठोड़ी

एवं कान की पपड़ी को अ ब स मानकर एक त्रिभुज खींचा जाय तो वह समत्रिबाहु हो। चित्र—२, आकृति अ। ऐसी परिपूर्ण आकृति जीवन में आशा, विश्वास, महत्वाकांक्षा, उद्यम, यश, सफलता, समृद्धि एवं वैभव की परिचायक होती है। इसके विपरीत जब यह त्रिकोण विषम होता है तो वह कोण विशेष की विषम स्थिति के अनुसार स्वभाव एवं चरित्र में दुर्गुणों को अभिवृद्धि करता है। इसका पूर्ण वर्णन हम मुखाकृति के विभिन्न अंग-लक्षणों के अन्तर्गत करेंगे।

समकोणाकृति—इस आकृति पर नाक के नीचे के सन्धि-स्थान को केन्द्र मानकर एक आड़ी रेखा कान की पपड़ी की ओर एवं दूसरी एक खड़ी रेखा ठोड़ी से ललाट का स्पर्श करते हुए खींचें तो प्रतीत होगा कि नाक के नीचे बनने वाले सभी कोण ९०° के होंगे। चित्र—२, आकृति—ब। इस आकृति से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि नाक का सन्धि-स्थान एवं कान की पपड़ी एक (आकृति—अ की तरह) सरल रेखा पर है एवं ठोड़ी व ललाट भी एक सरल रेखा पर आते हैं।

समकोणाकृति वाले चेहरे उच्च कार्यक्षमता, स्पष्ट व्यावहारिकता, पूर्ण सभ्यता, सहनशीलता एवं सौम्यतापूर्ण व्यक्तित्व का संकेत देते हैं। यह लोग बड़े गम्भीर एवं विचारवान होते हैं, बहुत ही कम क्रोध में आते हैं, किन्तु यदि एक बार गुस्सा आ जाए तो फिर उन्हें सँभालना कठिन ही होता है।

न्यूनकोणाकृति—नाक के सन्धिस्थान एवं कान की पपड़ी पर स्थित आधार रेखा व ललाट की ओर जाने वाली खड़ी रेखा मुखाकृति के अन्दर की ओर जितनी झुकेगी उतना ही अधिक वह न्यूनकोण का





समकोणाकृति



न्यूनकोणाकृति



उन्नतोदराकृति



नतोदराकृति

चित्र-२

निर्माण करेगी। चित्र—२, आकृति—स। उपरोक्त चित्र में ऐसी ही स्थिति है। पाश्चात्य विद्वान लोमैक्स का कथन है कि विभिन्न जातियों के चेहरों के अध्ययन में 'केम्पर्सएंगल' का अधिकतम महत्व है। विचारक केम्पर ने बतलाया था कि यह कोण ९०° से जितना कम होगा, व्यक्ति उतना ही अधिक असभ्य होगा। इस प्रकार न्यून कोणों में केम्पर के अनुसार काकेशियन जाति में ८०°, मंगोल जाति में ७५°, नीग्रो जाति में ६०° से ७०°, गुरिल्ला जाति में ३१° एवं न्यू-फाउन्डलेण्ड के कुत्तों में २५° आदि होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि न्यूनकोणाकृति वाले व्यक्तियों में कोण की स्थिति के अनुसार कला, साहित्य, संस्कृति एवं सभ्यता आदि के सम्बन्ध में हीनता ही पाई जाती है। दूसरे शब्दों में कोण जितना न्यून होगा, जातक का मानसिक एवं बौद्धिक विकास उसी के अनुसार कम हो जाएगा।

उन्नतोदराकृति—इस प्रकार की आकृति में नाक प्रक्षेपी तथा ललाट और ठोड़ी अन्दर की तरफ ढलवाँ हो अर्थात् एक बाज़ू से देखने में सम्पूर्ण चेहरे का सम्मुख भाग बाहर की तरफ धनुषाकार या अर्धचन्द्राकार दिखाई दे तो उसे उन्नतोदराकृति कहेंगे। साधारण शब्दों में यह आकृति बाहर की तरफ उन्नत होती है। इसे अंग्रेजी में Convex Face कहते हैं। चित्र—२, आकृति-द। ऐसे जातक सूक्ष्म निरीक्षक, व्यावहारिक, द्रुतगामी, शक्ति-सम्पन्न, मनमौजी, आक्रामक, स्पष्टवक्ता, स्वनियन्त्रणहीन एवं सिद्धान्त-हीन होते हैं। यह लोग अपनी इच्छानुसार चलते हैं। यह सिद्धान्तों के लिए नहीं, सिद्धान्त इनके लिए होते हैं। इनमें समय और स्थिति के अनुसार अपने को ढालने का विवेक नहीं होता। सत्य के नाम पर वे टूट सकते हैं, झुक नहीं सकते। सामान्यतया यह आधुनिक युग में जीवन संघर्ष में सफल नहीं हो पाते, क्योंकि असत्य व अन्याय को सहन करने की क्षमता उनमें नहीं होती। वस्तुतः ऐसे जातक विश्वसनीय, सच्चे मित्र, अच्छे जीवन-साथी, उत्तम मार्ग-दर्शक एवं योग्य संरक्षक हो सकते हैं।

नतोदराकृति—यह मुखाकृति उन्नतोदराकृति के ठीक विपरीत होती है। ऐसे चेहरे में ललाट और ठोड़ी प्रक्षेपी तथा नासिका अन्दर बैठी हुई होती है। अन्य शब्दों में यह आकृति एक दृष्टि में मध्यम भाग से अन्दर की ओर धँसी हुई प्रतीत होती है अर्थात् जैसे उल्टा धनुषाकार हो। इसे

अँग्रेजी में The Concave Face कहते हैं। चित्र—२, आकृति-ड। ऐसे जातक का स्वभाव और चरित्र भी उन्नतोदराकृति के ठीक विपरीत होता है। यह लोग शान्त, गम्भीर, धीमे, चतुर, चालाक, विचारवान, समय और स्थिति को परखने वाले एवं शीघ्र झुक जाने वाले होते हैं। यह समय पर अपना काम निकालने के लिए असत्य और अन्याय का सहयोग लेने में भी नहीं हिचकते। बात के प्रत्येक पहलू पर सोचना इनकी आदत होती है। इनका झुकाव सदा ही लाभ की ओर रहता है, हानि की ओर नहीं। आज के भौतिक युग में ऐसे व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक सफल होते देखे जाते हैं। यह नौकरी में हों या व्यवसाय में, सदैव उन्नति की ओर अग्रसर होते रहते हैं। जो भी हो, आर्थिक जीवन की प्रगति के लिए इनसे अच्छी शिक्षा ली जा सकती है।

मिश्रिताकृतियाँ—प्रायः हमें उन्नतोदर एवं नतोदराकृतियों का मिश्रित रूप भी देखने को मिलता है। ऐसी स्थिति में निम्न फलादेश सम्भावित है।

यदि ऊपरी भाग उन्नतोदर एवं निम्न भाग नतोदर हो तो जातक अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यावहारिक लाभ प्राप्त करने की क्षमता से युक्त होते हैं। उन्हें किसी भी स्थिति में भावुक बनाकर उनसे कोई अप्रत्याशित लाभ नहीं उठाया जा सकता। यद्यपि यह हृदय से स्पष्ट एवं उदार होते हैं, तथापि मूर्ख नहीं होते। निम्न भाग के नतोदर हो जाने से उनमें उन्नतोदर के कुछ दुर्गुण कम हो जाते हैं।

यदि ऊपरी भाग नतोदर एवं निम्न भाग उन्नतोदर हो तो जातक में अस्थिरता, अदूरदर्शिता, भावावेश, अव्यावहारिकता, स्वप्नदर्शिता एवं जल्दबाजी जैसी प्रवृत्तियाँ घर कर लेती हैं। ऐसी स्थिति में नतोदर के गुणों में न्यूनता आ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपनी प्रगति में अपने भावुक एवं चंचल स्वभाव के कारण स्वयं रोड़े अटका लेता है। ऐसे जातक मन ही मन नित्य नई योजना का सूत्रपात करते हैं और उन्हें बिना किसी व्यावहारिक रूप के पुनः बदल देते हैं। इस प्रकार वह उन्नति के पथ पर अग्रसर न होकर जहाँ के तहाँ धरे रह जाते हैं। वे घर और घाट दोनों से ही हाथ धो बैठते हैं।

स्त्री विशेष फल—उपरोक्त वर्णित समस्त ज्यामितिकाकृतियों का स्त्रियों को भी वही फल प्राप्त होता है जो कि पुरुषों को होता है। इतना अवश्य है कि जहाँ पुरुषों को ये परिणाम घर के बाहर फलीभूत होते हैं, वहाँ स्त्रियां को गृहस्थ में ही दृष्टिगोचर होते रहते हैं।

तुलनात्मक आकृतियाँ—उपरोक्त विभिन्न प्रकार की आकृतियों का सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण एवं अनुभव आदि कर भारतीय आचार्यों ने जन-सामान्य को सरलतापूर्वक समझाने के लिए विभिन्न पशु-पक्षियों के चेहरों से इनकी तुलना कर इनके स्वभाव एवं चरित्र आदि का चित्रण किया है। यूँ तो मानव और अन्य प्राणियों के चेहरों में मूलस्वरूप से अन्तर होता ही है, यदि आप एक दृष्टि में उन्हें आकार की तुलना से देखें तो विभिन्न मानव मुखड़े भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों से काफी मिलते-जुलते दिखाई पड़ेंगे। आकार एवं फल निदेशानुसार उनमे से कुछ इस प्रकार हैं।

उलूक—इस प्रकार की आकृति में सम्पूर्ण आकार, नेत्र एवं नासिका की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यदि जातक का आकार एवं नेत्र गोल तथा नाक नीचे से नुकीली और भीतर की ओर मुड़ी हुई हो तो उसे उलूकाकृति के ही समतुल्य कहा जाता है। ऐसे जातक संयमी तथा व्यवस्थित वातावरण प्रिय होते हैं, किन्तु उनमें कल्पना तथा साहस का अभाव एवं मूर्खता का प्राबल्य होता है, इसीलिए यह लक्ष्मीवाहन के अवतार कहलाते हैं।

ऊँट—ऐसे जातक की ग्रीवा एवं निचला जबड़ा अनुपात से कुछ अधिक लम्बा एवं असन्तुलित होता है। इनके उक्त दोनों अंग सदैव गतिमान रहते हैं। इसलिए यह लोग ऊष्ट्राकृति कहलाते हैं। ऐसे जातक गम्भीर, सहनशील एवं परिश्रमी होते हैं किन्तु प्रायः प्रेम व सहानुभूति से वंचित रहते हैं। इनका शोषण अधिक होता है और यही कारण है कि यह अक्सर वैभवहीन प्रतीत होते हैं।

कुत्ता—इस पशु की आकृति में जबड़ों का अत्यधिक महत्व होता है। इसके जबड़े के समान मुख वाले लोगों का स्वाभाविक रूप से न्यून कोण बनता है अर्थात् मुंह चेहरे की अपेक्षाकृत अधिक आगे को निकला रहता है। ऐसे व्यक्तियों में सेवाभाव, स्वामिभक्ति एवं साहस भले ही हो, किन्तु

उनका दुमहिलाऊपन, गुर्राना एवं अपने क्षेत्र में ही साहस प्रदर्शन करना उचित नहीं होता।

कौआ—इस पक्षी के समान प्रक्षेपी नाक तथा गोल नेत्रों से ऐसे जातक का परिचय प्राप्त होता है। प्रक्षेपी दीर्घाकार नाक के कारण इन लोगों में चातुर्य, उत्तेजना एवं दीर्घ दृष्टि तो होती है किन्तु नेत्रों से इनकी निर्लज्जता, लोभ, स्वार्थ, आक्रामकता, दुस्साहस एवं सीमित विचारधारा का भी आभास मिलता है। यह लोग स्वतन्त्र व्यवसाय में अधिक सफल हो सकते हैं, सेवा में नहीं।

गर्दभ—यह आकृति लम्बाकार होती है, इसमें ललाट से ठोड़ी तक का भाग ध्यान से देखना उचित होता है। साथ ही ललाट छोटा किन्तु चौड़ा एवं मुंह का जबड़ा भी कुछ अधिक चौड़ा होता है। ऐसे जातक में अध्ययन, मनन एवं चिन्तन का अभाव तथा आलस्य एवं म्लेच्छता होते हुए भी परिश्रम एवं स्वान्तःसुखाय की प्रवृत्ति होती है। परजीवी होना, इनकी अपनी विशेषता है।

गरुड़—इस पक्षी के समान ही तीव्र दृष्टि एवं प्रक्षेपी नाक वाले जातक प्रायः साहसी, युद्धप्रिय, तीव्र स्वभाव एवं अहं से युक्त होते हैं। जीवन-संघर्ष में यह शक्ति को ही सर्वोच्च मानते हैं। उसकी ही उपासना करते हैं एवं उसी के आधार पर अग्रसर होते हैं।

घोड़ा—सामने से इस प्रकार की दीर्घाकार आकृति वाले जातक अश्व-मुखी कहलाते हैं। यह आकार गर्दभाकृति से कुछ अधिक कान्तियुक्त होता है, लेकिन इसमें गधे जैसी म्लेच्छता नहीं होती। जिनका चेहरा उक्त तथ्यों से युक्त हो, वे उदारता में सर्वस्व बलिदान करने को तत्पर रहते हैं, किन्तु ऐसा यह केवल अपने अहं की तुष्टि के लिए ही करते हैं।

चील—ऐसे जातक की नासिका चील पक्षी की तरह प्रक्षेपी, दृष्टि दूरदर्शी एवं ललाट का ऊपरी भाग कुछ वर्तुल होता है। उनमें कल्पना की ऊँची उड़ान, उसे साकार करने की दृढ़ता, उच्च चरित्र, पूर्ण साहस एवं तीव्र कर्मठता होती है, किन्तु प्रायः ऐसे जातक असफलता के क्षणों में अपना संतुलन खो बैठते हैं और आवेश एवं उत्तेजना में दूसरों पर झपट पड़ने के आदी होते हैं।

चूहा—लघु मस्तकाकृति और सीधी, नुकीली एवं छोटी-सी नाक वाले जातक मूषकाकृति के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि यह ज्ञान-पिपासु होते हैं, लेकिन अपने चातुर्य एवं तीव्रता का उपयोग वह छल-कपट, मूर्खता एवं उच्छृंखलता में करते हैं, इसलिए बड़ी जल्दी पहचानने में आ जाते हैं। परिणामस्वरूप अन्य लोग उनसे सदैव बचने का प्रयास करते हैं।

तोता—इस प्रकार के जातक की नासिका नुकीली एवं वर्तुलाकार




चित्र क्रमांक—३

होती है। तोते से मिलती-जुलती नाक वाले इन जातकों में ज्ञान की कृत्रिम नाटकीयता, मनन-चिन्तन का अभाव, वाक्शक्ति की मृदुता, रटने की प्रवृत्ति एवं शीघ्र लोकप्रियता बढ़ाने की भावना होती है। सारांश में यह लोग ढोंगी अधिक होते हैं। चित्र-३।




चित्र क्रमांक—४

बकरा—इस प्रकार का मुख न्यूनकोण तो होता ही है, साथ ही मुंह भी कुछ आगे निकला हुआ, पीछे से चौड़ा एवं आगे से पतला होता है। इनके दोनों होंठ भी द्रुतगतियुक्त तथा छोटे एवं पतले होते हैं। प्रायः एक छोटी-सी दाढ़ी रखने का भी इन्हें चाव हो सकता है। ऐसे जातकों में अक्सर इधर-उधर भटकने की आदत हो सकती है, किन्तु भौतिक सुख जैसे स्त्री, पुत्र एवं सम्पत्ति प्राप्त करने में यह लोग चतुर होते हैं। सन्तति उत्पादन क्षमता भी इनमें सामान्य से कुछ अधिक ही होती है। चित्र-४।

बन्दर—डार्विन के सिद्धान्तानुसार मानव बन्दर की सन्तान है, अतः बन्दर की आकृति से उसका चेहरा मिलना आश्चर्यजनक नहीं है। ऐसी





चित्र क्रमांक—५

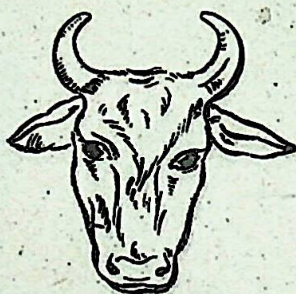
आकृति वाले जातक बड़े सतर्क एवं साधारण बुद्धि के होते हैं, किन्तु उनमें कामवासना का प्राबल्य, मादक द्रव्यप्रियता, छल-कपट एवं चौर्य कर्म की प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगोचर होती है। चित्र-५।

बिल्ली—बाघ और बिल्ली के चेहरों के समान जिनकी आकृति होती है उनके मुख पर नेत्र अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। उनकी नासिका बाह्य रूप में उतनी प्रक्षेपी नहीं होती, किन्तु उसकी घ्राणशक्ति बड़ी तेज होती है. इस कारण वे दूर से ही बहुत कुछ सूंघ लेते हैं। ऐसे जातक में अचेतनज्ञान, क्रोध, आक्रामता, हिंसा, उच्छृंखलता, कपट एवं सतर्कता के गुणावगुण होते हैं।

बैल—वृषभाकृति के जातक का ललाट भाग चौड़ा, किन्तु कम उठा

हुआ, नेत्रों के नीचे गाल की अस्थियों का कुछ अधिक उठाव, गालों का फुलाव सामान्य चपटा एवं नथुनों का महत्वपूर्ण होता है। ऐसे जातक में स्वउत्तरदायित्वों की जागृति, परिश्रमप्रियता, उपकार करने की उत्कण्ठा एवं स्वजीवन के प्रति उदासीनता की भावना भी होती है। संक्षेप में यह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि वे लोग प्रायः दूसरों के लिये ही जीवित रहते हैं, स्वयं के लिए नहीं। चित्र—६।





चित्र क्रमांक—६

भेड़—इस प्रकार की आकृति वाले जातकों के नासिका, होंठ, ठोड़ी एवं ग्रीवा की गति तथा आधुनिक युग में बालों की शैली पर भी कुछ ध्यान





चित्र क्रमांक—७

देना उपयुक्त होगा। इस प्रकार के आकार में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं

अधिक सेंट होती हैं। ऐसे जातक प्रायः भेड़ चाल चलने के आदी होते हैं। वे स्व-विवेक से काम न लेकर केवल नकल की प्रवृत्ति के समर्थक होते हैं। बिना अपनी अकल के केवल अन्य की नकल भर करना उन्हें खूब भाता है। स्वभाव से यह नम्र, उदार एवं दयालु हो सकते हैं, किन्तु हठ इनके उपरोक्त सद्गुणों पर पानी फेर देता है। चित्र—७।

भेड़िया—इस पशु की आकृति वाले जातक में न्यूनकोण एवं नासिका, जबड़ा आदि इस बात के द्योतक होते हैं कि जातक में छल, कपट, ढोंग, कठोरता, हिंसा, उद्दण्डता एवं आक्रामकता आदि की प्रवृत्ति है। ऐसे लोग प्रायः अपराधी मनोवृत्ति के होते हैं तथा सदैव समाज में या समाज से दूर रहकर भी समाज को हानि पहुंचाने के ही प्रयत्न करते रहते हैं।

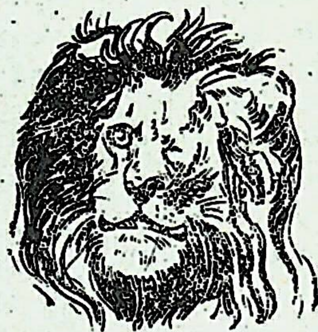
भैंसा—इस प्रकार की आकृति वाले जातक भी बैल के समान ही होते हैं, किन्तु इनका वर्ण काला, शरीर मांसल एवं नेत्र रक्तिम होते हैं, परिणामस्वरूप इनके स्वभाव एवं चरित्र में हिंसा, क्रोध, आलस्य, घमण्ड, हठ, आक्रामकता एवं छल की प्रवृत्ति अधिक होती है। ऐसे व्यक्तियों से जबरन परिश्रम, ताड़ना से अनुशासन एवं सैन्य या कृषि कर्म करवाया जाय तो अधिक सफलता प्राप्त हो सकती है।

लोमड़ी—इस आकार का परीक्षण कुत्ते, भेड़िये एवं भेड़ की शारीरिक रचना से समता रखने वाले मुख से करना चाहिए। यह आकृति धूर्तता, चाटुकारिता, अहं एवं छल की परिचायक होती है। ऐसे जातक में धैर्य एवं विचारशक्ति भी होती है, किन्तु वह उसका उपयोग रचनात्मक रूप में न करके स्वस्वार्थहित प्रायः ध्वंसात्मक रूप में करता है। इस प्रकार की आकृति वाले जातक प्रायः विश्वासपात्र नहीं होते।

सिंह—वनराज की आकृति से तो प्रायः सभी परिचित होते हैं। तेज घ्राणेन्द्रिय से युक्त फैली हुई मोटी नासिका, सूच्याकार चेहरा, चमकती हुई आँखें, फैला हुआ मोटे होंठों से युक्त मुंह एवं घने केश आदि इनके चेहरे की अपनी विशेषता होती है। ऐसे चेहरे से मिलते-जुलते चेहरे वाले जातक प्रायः उच्चमहत्वाकांक्षी, स्थिर बुद्धि, स्वावलम्बी, उदार, चरित्रवान, बात के धनी, नेतृत्वप्रिय, गम्भीर एवं साहसी होते हैं। भारत में ऐसे व्यक्ति अधिकांश रूप से राजस्थान एवं पंजाब में अधिक देखे जा सकते हैं। वे अपनी

आन-बान एवं शान के लिए अपना सर्वस्व तक न्योछावर कर देते हैं। चित्र-८।





चित्र क्रमांक—८

उपरोक्त तीनों अनूक प्रणालियों से प्रमुख सभी आकृतियों का परिचय प्राप्त हो जाता है, किन्तु जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है भारतीय ज्योतिर्विज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न ग्रहों से प्रभावित मनुष्यों को भी भिन्न-भिन्न नाम संज्ञाओं से सम्बोधित किया गया है। जिसके अनुसार उनके सर्वांग लक्षण, स्वभाव एवं चरित्र आदि में भी पर्याप्त अन्तर होता है। अब हम उक्त आधार पर भी मुखाकृति की दृष्टि से अध्ययन करेंगे—

हंस संज्ञक—इस वर्ग के लोग गुरु ग्रह से अधिक प्रभावित होते हैं। इनका आकार सामान्यतः गोल होता है। इनके गाल पुष्ट, ठोड़ी में गड्ढा, गला मांसल, युवावस्था में घने बाल, किन्तु प्रौढ़ावस्था में गंजे, उठी हुई नासिका, मधु पिंगल (नारंगी) रंग के नेत्र, वाणी मृदु किन्तु अनुशासनयुक्त एवं कान्ति स्वर्णिम होती है। ऐसे जातक जल क्षेत्र प्रिय होते हैं अर्थात् नदी, तालाब, सागर आदि के किनारे रहना या उनमें विचरण करने का उन्हें बहुत चाव होता है। ऐसे जातक प्रायः गंगा और सिन्धु के मैदानों में अधिक देखे जा सकते हैं। वे महत्वाकांक्षी, नेतृत्वप्रिय, अनुशासनयुक्त, गम्भीर, स्वाभिमानी, विद्वान, दूरदर्शी एवं उदार होते हैं।

शश संज्ञक—इस वर्ग के लोग शनि ग्रह से अधिक प्रभावित होते हैं।

इनका आकार साधारणतया अण्डाकार ही होता है। इनके नेत्र छोटे, काले एवं गहरे, वर्ण कुछ पीला, भौंहें पास-पास, नाक लम्बी, नुकीली एवं नीचे को झुकी हुई, होंठ बड़े व पतले, गालों की अस्थि ऊँची, किन्तु पुष्ट गाल, वाणी भद्दी एवं शरीर स्थूल होता है। ऐसे जातक भौतिकताप्रिय, चंचल, शंकाशील, साहसी, मितव्ययी, परस्त्रीरत, कठोर, सहनशील, एकान्तसेवी, धर्माचार्य, गणितज्ञ, पुरातत्व प्रेमी, हठी एवं साहसी होते हैं। यह लोग प्रायः काला, मलिन या भद्दा रंग पसन्द करते हैं तथा अपने वस्त्रों एवं श्रृंगार के प्रति निराश रहते हैं।

रुचक संज्ञक—इस वर्ग के लोगों पर मंगल ग्रह का अत्यधिक प्रभाव होता है। इनके सिर छोटे, ललाट ऊँचा, गाल कठोर, सूखी रक्तिम त्वचा सहित कुछ बैठे हुए, कनपटियों के पीछे के बाल लाल, कठोर तथा घुंघराले, मुख लम्बा, नेत्रों में रक्तिम डोरे, भौंहें नेत्रों के पास कुछ झबरीली, होंठ मोटे, दाँत छोटे व पीले, कान बड़े किन्तु सिर से दूर, ठोड़ी बड़ी, मोटी तथा चौरस, नाक ऊँची-नीची एवं वाणी बुलन्द, किन्तु भद्दी होती है। ऐसे जातक वीर, साहसी, युद्धप्रिय, उत्तेजक, आक्रामक, जल्दबाज, विषयी, गर्वयुक्त एवं योग्य परामर्शदाता होते हैं। इनको घुड़सवारी, शिकार, युद्धावस्था एवं दंगल आदि का बहुत शौक होता है। नवीन स्थानों की खोज तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों को पढ़ने में प्रायः यह अपना खाली समय व्यतीत करना पसंद करते हैं। चमकीला लाल रंग इन्हें बहुत अच्छा लगता है। विन्ध्य एवं मालव क्षेत्र में ऐसे व्यक्ति अधिकांशतः देखे जा सकते हैं। मन्त्र-शास्त्र एवं हठ योग में भी इनकी विशेष रुचि होती है।

भद्र संज्ञक—इस वर्ग के लोग बुध ग्रह से अधिक प्रभावित होते हैं। इनका स्वरूप 'व्याघ्रमुखः स्थिरश्च' के अनुसार बाघ के समान होता है। विद्वानों के अनुसार बोलते समय इनका मुख अधिक चोड़ा, दाँत पंक्तिबद्ध किन्तु छोटे, ललाट उन्नत, ठोड़ी पतली, आँखें भूरी-नींली, दृष्टि चंचल एवं तीक्ष्ण, नाक सीधी, भौंहें मिली हुई, वर्ण हल्का पीला, बाल हल्के भूरे एवं वाणी निर्बल या कभी-कभी तुतलाती हुई होती है। ऐसे जातक परिश्रमी, चंचल, विचारवान, तेज स्मरणशक्तियुक्त, सतर्क, सुगन्धप्रिय, दयालु, कला-प्रेमी, धर्मरत, हरा रंग पसन्द करनेवाले, विचित्र वस्तुओं के संग्रहकर्त्ता

एवं बातूनी होते हैं। वे अच्छे वकील, लेखक, शिक्षक, व्यवसायी एवं कला निर्देशक भी हो सकते हैं।

मालव्य संज्ञक—इस वर्ग के लोगों पर शुक्र ग्रह का अधिक प्रभाव होता है। इनका चेहरा तेरह अंगुल लम्बा कुछ वर्तुलाकार उभरा हुआ एवं स्निग्ध होता है। नेत्र श्वेत, दाँत सुन्दर, साफ एवं पंक्तिवद्ध, भौंहें हल्की, वर्ण श्वेत, बाल काले एवं वाणी कोमल होती है। ऐसे जातक सहानुभूतियुक्त, एकान्तप्रिय, भावुक, प्रशंसाप्रिय, कामुंक, संगीत या नाटकप्रेमी, रेशमी वस्त्रों के शोकीन, गुलाबी या पीला रंग चाहने वाले, कामशास्त्र या नाट्यशास्त्र के अध्ययन करने वाले, विपरीत योन की ओर आकर्षित, प्रभावशाली एवं सरल होते हैं। भारत में कच्छ, सिन्धु एवं जम्मू-कश्मीर में ऐसे लोग अधिक देखे जा सकते हैं।

उपरोक्त पंच महापुरुष वर्ग में सूर्य एवं चन्द्र से प्रभावित व्यक्तिओं का समावेश नहीं है। कतिपय अन्य आचार्यों के अनुसार उक्त ग्रहों से प्रभावित लोगों में निम्न लक्षण एवं विशेषताएँ होती हैं—

सूर्य प्रभाव—इस ग्रह से प्रभावित व्यक्ति का आकार गोल व सुडौल, ठोड़ी गोल किन्तु प्रक्षेपी, नाक सरल, मुख सामान्य तथा आँखें लम्बी, पीली या भूरी, कान सामान्य किन्तु ऊपर सिर के समीप, दाँत मध्यम व साधारण श्वेत, त्वचा कान्तियुक्त, गाल उभरे हुए तथा गड्ढों से युक्त, वाणी गर्वीली एवं चाल तेज होती है। ऐसे जातक उदार, दयालु, अन्धविश्वासरहित, सत्यनिष्ठ, न्यायी, स्पष्टवक्ता, सभ्य-सम्पन्न, वभवशील, पराक्रमी, चंचल, उतावले एवं स्वार्थयुक्त, फिजूलखर्ची, लापरवाह, गर्विष्ट व यशस्वी होते हैं।

चन्द्र प्रभाव—इस ग्रह से प्रभावित व्यक्ति की आकृति भी सामान्यतः गोल, ललाट उठा हुआ तथा कनपटी के पास चौड़ा, आँखें बड़ी तथा भूरी, पनीली, भौंहें नाक के ऊपर जुड़ी हुई किन्तु पतली, मुंह छोटा, होंठ भरे हुए तथा कुछ खुले, दाँत बड़े व कुछ पीले, ठोड़ी गोल किन्तु पीछे को हटी हुई, नाक छोटी एवं वाणी धीमी होती है। सामान्यतः ऐसे जातक अल्पज्ञ, सौन्दर्यप्रिय, स्वप्नदर्शी, मनमौजी, संवेदनशील, निराश, चंचल, एकान्तप्रेमी एवं सहृदय होते हैं। इनको काव्य एवं संगीत से विशेष मोह होता

है किन्तु यह श्रृंगार का वियोग पक्ष अधिक पसन्द करते हैं।

उपरोक्त सभी वर्ग के सभी व्यक्तियों को कामशास्त्र की दृष्टि से चार भागों में विभाजित कर क्रमशः शशक संज्ञक, मृग संज्ञक, तुरंग संज्ञक एवं वृष संज्ञक आदि के नाम से सम्बोधित किया गया है। शशक संज्ञक गोल आकार, चंचल किन्तु विस्तृत नेत्र एवं कोमल केश से युक्त, चन्द्र ग्रह तथा जलतत्त्व से प्रभावित, रजोगुणी एवं सौम्य होते हैं।

मृग संज्ञक में मृदुता एवं चंचलता अधिक होती है। वे जलतत्त्व प्रधान, चन्द्र ग्रह से प्रभावित, लम्बी, पतली आकृति वाले एवं निर्मल कान्ति से युक्त होते हैं।

तुरंग संज्ञक आकार में न्यूनकोणाकृति, अग्नि तत्त्व से प्रभावित, तमोगुणी, मंगल ग्रह वर्ग के एवं श्वान, काक या श्रृगाल के समान दृष्टिगोचर हो सकते हैं। वृष संज्ञक जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है बैल वर्ग के, शनि व शुक्र ग्रह से प्रभावित, रजोगुणी, पृथ्वी, और वायु तत्त्व प्रधान एवं अपेक्षाकृत कुछ कम न्यून कोणाकार होते हैं।

स्त्री विशेष फल—इन समस्त आकृति तथ्यों का अपने गुणधर्मानुसार स्त्रियों पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा पुरुषों पर। अतः स्त्रियों के स्वभाव एवं चरित्र का इसी के अनुरूप शुभाशुभ फलादेश करना उपयुक्त होता है।

उन्मान (परिमाण)

उन्मान शब्द सामुद्रिक विज्ञान में प्रायः ऊँचाई के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु कई आचार्यों की परम्परा में इसके अन्तर्गत लम्बाई-चौड़ाई एवं मोटाई आदि आँकने की प्रथा भी रही है। हम इसी आधार पर मुखाकृति तथा उसके प्रमुख अंगों के सामान्य स्तरीय मापों का विवेचन करेंगे।

सर्वप्रथम यह स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है कि प्राचीन समय से भारत में लम्बाई-चौड़ाई आदि नापने के लिए योजन, हाथ, अंगुल एवं यव आदि की प्रणाली का प्रमुख रूप से प्रयोग होता आया है। इसीलिए सामुद्रिक शास्त्र में भी हाथ, अंगुल एवं यव आदि के द्वारा माप स्पष्ट करने की प्रणाली रही है। मुखाकृति-विज्ञान के अन्तर्गत स्थूल मान देने के लिए अधिकांश रूप में अंगुल एवं यव का अधिक उपयोग किया जाता है। पाश्चात्य सामुद्रिक अपने देश की प्रणाली के अनुसार इसे इंच एवं सैण्टीमीटर से स्पष्ट करते आए हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक उक्त पाश्चात्य प्रणाली का उपयोग भारत में भी होता रहा है। भारतीय प्राचीन माप पद्धति एवं अर्वाचीन पाश्चात्य पद्धति का मुखाकृति विज्ञान के क्षेत्र हेतु स्थूल रूप से सामान्य स्तरीय तारतम्य निम्नानुसार होता है—

८ यव = १ अंगुल, २४ अंगुल = १ हाथ,

एक हाथ = १८ या १९ इंच।

सम्पूर्ण आकार परिमाण—महर्षि समुद्रेण के अनुसार ग्रीवा से लेकर पीछे बाल पर्यन्त सम्पूर्ण चेहरे की लम्बाई लगभग ३६ अंगुल एवं एक कान से दूसरे कान तक मस्तक के ऊपर से लम्बाई लगभग १८ से २० अंगुल होती है। कान से कान की दूरी में उपरोक्त दो अंगुल का अन्तर कानों के आकार एवं ऊँची-नीची स्थिति को ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया है। इस प्रकार उपरोक्त दोनों परिमाण एक सामान्य स्तरीय माप होते हैं। इससे लगभग ४ अंगुल अधिक लम्बाई तक उत्तम विकसित एवं उससे अधिक असामान्य तथा ४ अंगुल कम लम्बाई तक न्यून विकसित एवं उससे अधिक असामान्य मानी जाती हैं। दोनों ही स्थितियाँ अशुभ होती हैं।

सामान्यत: ठोड़ी से ललाट पर्यन्त चेहरे की लम्बाई लगभग १२ अंगुल एवं एक कान से दूसरे कान तक चेहरे की चौड़ाई १० से १४ अंगुल तक होती है। इसमें १२+१४ अंगुल के चेहरे अण्डाकार कहे जाते हैं।

ग्रीवा परिमाण—भारतीय प्राचीन सामुद्रिकविदों के अनुसार ग्रीवा या गर्दन की ऊँचाई ४ अंगुल एक परिधि २० से २४ अंगुल तक सामान्य स्तरीय कहलाती है इससे अधिक ऊँची एवं मोटी या पतली गर्दन शुभ नहीं होती। सामान्य ग्रीवा उत्तम स्वास्थ्य, विकसित बुद्धि, धैर्य एवं साहस की

परिचायक होती है। इसके विपरीत स्थूल ग्रीवा मन्द-बुद्धि, अकर्मण्यता, आलस्य एवं दरिद्रता की सूचक तथा पतली ग्रीवा दुर्वलता, चिन्ता, जड़ता, अविवेक एवं अल्पायु की प्रतीक होती है।

मुख क्षेत्र परिमाण—ठोड़ी से लेकर नासिका के उत्तिस्थान तक का भाग मुख क्षेत्र कहलाता है। इसकी लम्वाई एवं चौड़ाई सामान्यतः ४ + ४ होती है। इसकी लम्बाई ४ अंगुल की श्रेष्ठ तथा ३ अंगुल की मध्यम एवं उससे कम निम्न श्रेणी की मानी जाती है। इसी प्रकार ४ अंगुल से अधिक लम्वाई भी उपयुक्त नहीं होती।

इस क्षेत्र का प्रमुख अंग मुँह होता है, जिसके मुख्य वाह्य अवयव दोनों होंठ होते हैं। अतः इनकी लम्वाई एवं चौड़ाई का इस क्षेत्र में अत्यधिक महत्त्व होता है।

दोनों होंठों की लम्बाई लगभग मुख क्षेत्र की चौड़ाई समतुल्य होती है। असामान्य स्थिति में ही यह उससे अधिक छोटी होती है। अतः हम यहाँ दोनों होंठों की चौड़ाई अर्थात् मोटाई का विवेचन करेंगे। सामान्यतः दोनों होंठों की कुछ चौड़ाई १२ से १६ यव के लगभग उपयुक्त होती हैं। इसमें भी १२ यव की मोटाई श्रेष्ठ, १० यव की मोटाई साधारण, ८ यव की मोटाई मध्यम एवं उससे कम की निम्न वर्ग में आती है। १६ यव से अधिक मोटाई अशुभ होती है।

सन्तुलित परिमाण वाला मुख क्षेत्र उत्तम वाक्शक्ति, उच्च उच्चारण क्षमता एवं स्पष्ट ध्वनि का द्योतक होता है। ऐसे जातक अपने आप में सुन्दर दिखने वाले एवं अपने वाक्वल से अन्य लोगों को आकर्षित तथा प्रभावित कर परिणामस्वरूप अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य में सफल होते हैं। इनकी वाक् अभिव्यक्ति इतनी प्रबल होती है कि वे शास्त्रार्थ एवं चर्चा में कभी मुँह की नहीं खाते जबकि इसके विपरीत श्रेणी वाले विद्वान् अनुभूति सम्पन्न होते हुए भी वाद-विवाद, प्रभाव एवं आकर्षण से असफल हो सकते हैं।

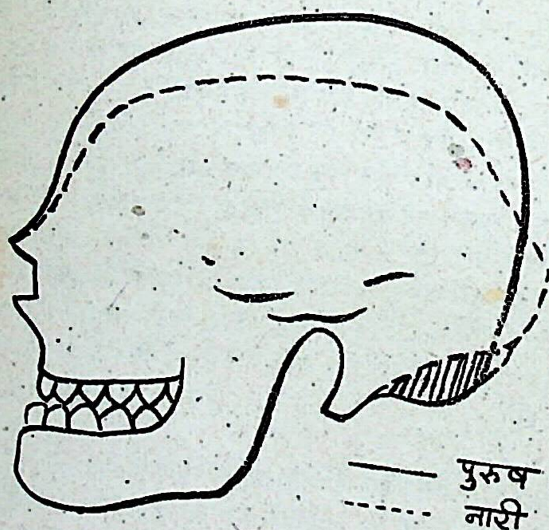
होंठों के परिणाम हेतु यव सलाका का प्रयोग खड़े यव से नहीं अपितु आड़े यव से करना चाहिए, नहीं तो अनर्थ की सम्भावना होती है।

नासिका क्षेत्र परिमाण—यह क्षेत्र नासिका के उत्तिस्थान से लेकर

भौंहों के मध्य सन्धि स्थान के आजू-बाजू तक होता है। इस क्षेत्र की लम्बाई ४ अंगुल एवं नाक के नथुनों की चौड़ाई २ अंगुल की सामान्य होती है। इससे अधिक की लम्बाई-चौड़ाई या इससे कम लम्बाई-चौड़ाई या अधिक लम्बा क्षेत्र एवं कम चौड़े नथुने आदि उचित नहीं होते। ऐसे जातक प्रायः असुन्दर, अनाकर्षक, अविवेकी, अस्थिर एवं अज्ञानी ही होते हैं।

यहाँ इसके साथ ही यह स्पष्ट करना उचित होगा कि इसी क्षेत्र के अन्तर्गत नेत्र एवं कान भी आते हैं। दोनों नेत्रों की चौड़ाई सामान्यतः ४ अंगुल एवं ऊँचाई २ अंगुल अर्थात् इनकी लम्बाई-चौड़ाई ४+२ शुभ होती है। इससे अधिक असामान्य मानी जाती है। उसी प्रकार प्रायः कान की लम्बाई भी नासिका के समतुल्य होती है एवं चौड़ाई उसके आधे से कुछ अधिक। इसके विपरीत कम-ज्यादा लम्बाई-चौड़ाई के कान भिन्न-भिन्न आकार के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं एवं उनके शुभाशुभ फल भी विभिन्न होते हैं, जिनका विस्तृत अध्ययन हम आगे करेंगे।

ललाट-मस्तक क्षेत्र परिमाण—नासिका के सन्धि स्थान एवं भौंहों के



चित्र क्रमांक—६

ऊपर से सिर के बाल प्रारम्भ होने वाले स्थान तक एवं दोनों कनपटियों के मध्य का भाग ललाट क्षत्र कहलाता है। सामान्यतः इस ललाट क्षेत्र की ऊँचाई ४ अंगुल एवं एक कनपटी से दूसरी कनपटी के मध्य की चौड़ाई ६ से ८ अंगुल होती है। ऐसा ललाट विस्तृत कहलाता है, जो सन्तुलित बुद्धि, विकसित ज्ञान, अच्छी स्मरणशक्ति, न्यायप्रियता, विश्लेषणक्षमता एवं उदारहृदयता का परिचायक होता है। इससे कम या अधिक विस्तार का ललाट न्यूनाधिक असन्तुलन का प्रतीक होता है।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के अनुसार ललाट से मस्तक अर्थात् नासिका के सन्धिस्थान से पीछे बाल पर्यन्त कुल लम्बाई कम से कम २१ इंच एवं अधिक से अधिक २४½ इंच मध्य सामान्यतः होनी ही चाहिए। २१ इंच से कम लम्बाई अविकसित मस्तिष्क, बुद्धिहीनता, मूर्खता, उजड्डता, असभ्यता एवं स्वार्थपरता का सूचक होता है तथा २४½ इंच से अधिक बड़ा मस्तक भी स्वभाव एवं चरित्र में दुर्गुणों की अभिवृद्धि करता है।

इस प्रकार ग्रीवा ५ अंगुल, मुख क्षेत्र ४ अंगुल, नासिका क्षेत्र ४ अंगुल एवं ललाटक्षेत्र ४ अंगुल अर्थात् ग्रीवा से ललाट तक कुल लम्बाई १६ अंगुल अथवा १२ इंच होती है।

स्त्री-पुरुष मस्तक अन्तर—सामान्यतः एक वर्ग के, एक पुरुष मस्तक की अपेक्षा एक नारी मस्तक प्राकृतिक रूप से कुछ छोटा होता है। भारतीय सामुद्रिक के अनुसार साधारणतया एक नारी चेहरे का प्रत्येक क्षेत्र पुरुष चेहरे के प्रत्येक क्षेत्र से लगभग एक अंगुल न्यून ही होता है।

इस प्रकार स्त्री जातक में मुखाकृति परिमाण परीक्षण तथा फल निर्देश देते समय उपरोक्त सामान्य अनुपातों का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। उदाहरण हेतु समुद्रेण के अनुसार जहाँ ४ अंगुल प्रमाण का पुरुष ललाट क्षेत्र सामान्य होता है वहाँ स्त्री ललाट क्षेत्र ३ अंगुल का ही माना जाता है। अतः इसी तरह अन्य क्षेत्रों का भी निर्धारण करना चाहिए।

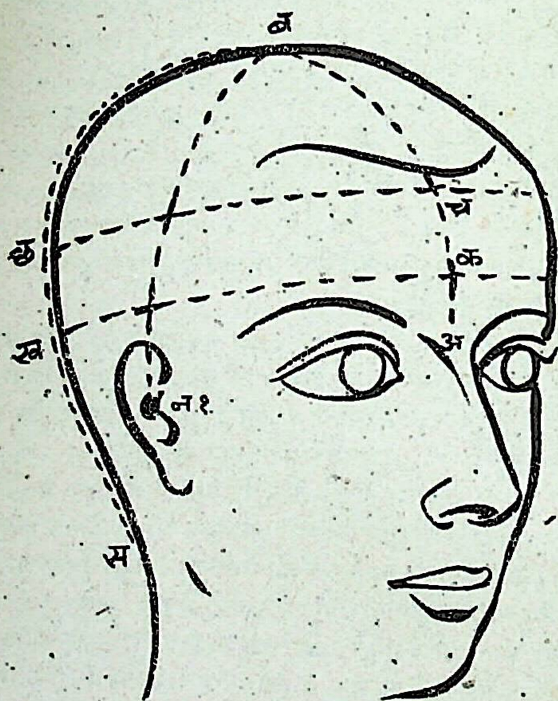
उपर्युक्त एवं सही परिमाण के लिए शीर्ष परिमाण को निम्न प्रकार आँकना चाहिए।

चित्र क्रमांक-१० के आनुसार नासिका सन्धिस्थान से मस्तक के ऊपर होकर बाल पर्यन्त अ ब स को एक फीते से नापिये।

दायें कान के छिद्र स्थान नं० १ से बाय कान के छिद्र स्थान नं० २ को, मस्तक के ऊपर ब स्थान से होकर नापिये।

इस प्रकार आपके पास मस्तक के सामने से पीछे तक की एक लम्बाई अ ब स एवं मस्तक के एक ओर से दूसरी ओर की लम्बाई नं० १ व नं० २ हो जायेगी। अब यह देखिये कि उपरोक्त दोनों लम्बाइयों में से कौन-सी अधिक है ?

अब यदि अ ब स की लम्बाई नं० १ व नं० २ की दूरी से ½ इंच अधिक



चित्र क्रमांक—१०

लम्बी हो तो ऐसे जातक में महत्वाकांक्षा, आदर्शप्रियता, बुद्धिमानी एवं विवेकशीलता आदि गुण अधिक होंगे।

यदि उपरोक्त अ ब स की लम्बाई द्वितीय से १ इंच अधिक हो तो व्यक्ति में सत्य, न्याय, अहिंसा, शान्ति एवं उदारता की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक होगी।

यदि उक्त लम्बाई २ इंच या उससे भी अधिक हो तो ऐसे जातक में आदर्श की चरमस्थिति सम्भावित है। ऐसा जातक या तो उच्चकोटि का दार्शनिक होगा या फिर इतने गम्भीर तथ्यों का जानकर होगा जिन्हें सामान्य जन न समझ सकते हों। ऐसे जातक दुनिया की दृष्टि में पागल होते हैं। परिणामस्वरूप उनका भौतिक जीवन संकटपूर्ण एवं क्लेशयुक्त हो सकता है।

इसके विपरीत यदि द्वितीय दूरी नं० २, प्रथम दूरी अ ब स से ½ इंच से लेकर २ इंच तक अधिक हो तो ऐसे जातक में काम, क्रोध, लोभ, मोह, धूर्तता, अनाचार एवं रहस्यमय जीवन की प्रवृत्ति, लम्बाई की अधिकता के अनुपात से अधिक होगी।

यदि संयोगवश अ ब स एवं नं १ व नं० २ की दोनों दूरियाँ समान हों तो जातक में उपरोक्त गुणों व अवगुणों का एक सन्तुलित मिश्रण परिलक्षित होगा।

आइये, अब मस्तक की परिधि के तथ्यों पर विचार करें। ललाट पर प्रायः दो प्रकार की स्थितियाँ दिखलाई पड़ती हैं। कई लोगों के ललाट का ऊपरी भाग ऊँचा उठा हुआ एवं निचला भाग नीचे बैठा हुआ दिखाई पड़ता है। ऐसे ललाट को प्रतिबिम्बत ललाट या Reflective Forehead कहते हैं।

इसी प्रकार कुछ लोगों के ललाट का, नासिका सन्धि स्थान से ऊपर वाला भाग अर्थात् ललाट का निचला भाग उठा हुआ एवं बालों के पास वाला ऊपरी भाग कुछ दबा हुआ दिखाई पड़ता है। जिसे प्रत्यक्षज ललाट या Perceptive Forehead कहते हैं।

ऐसी दोनों आकृतियों में जहाँ प्रतिबिम्बित ललाट वाले जातक में उत्तम स्मरणशक्ति, कार्य-कारण के विश्लेषण की क्षमता, स्पष्ट अनुमान गति, किन्तु मन्द निरीक्षण क्षमता, न्यून मन केन्द्रीयता एवं व्यावहारिक शून्यता होती है, वहाँ प्रत्यक्षज ललाट वालों में सूक्ष्म निरीक्षण क्षमता, तीव्र स्म-

रण शक्ति, उत्तम मन केन्द्रीयता एवं रंग तथा आकार विश्लेषण की उच्च गति किन्तु अनुमान, कार्य-कारण विश्लेषण एवं अव्यावहारिकता आदि की न्यूनता होती है।

उपरोक्त दोनों प्रकार के ललाटों के साथ शीर्ष के अन्य पिछले या आजू-बाजू के स्थान भी उठे या दबे हो सकते हैं। अतः इनके साथ अन्य स्थानों के सन्तुलन या असन्तुलन को परखने हेतु तुलनात्मक मस्तक परिधियों को देखना आवश्यक है।

एक बार पुनः चित्र-१० पर दृष्टि डालिये। उक्त चित्र के अनुसार प्रथम नासिका के सन्धि स्थान के ऊपर के स्थान से पीछे ख स्थान तक फीते से नापिये, फिर मस्तक के दूसरी तरफ से चक्कर लगाकर पुनः क स्थान तक आ जाइए। इस प्रकार आपके पास मस्तक की एक परिधि का परिमाण अर्थात् क ख क की लम्बाई हो गई।

इसी प्रकार बाल के नीचे वाले च स्थान से,पीछे छ स्थान तक नापिये और उसके पश्चात् पुनः मस्तक का चक्कर लगाकर च स्थान तक नाप डालिये। अब आपके पास मस्तक परिधि का दूसरा परिमाण च छ च के माध्यम से हो गया।

उपरोक्त दोनों परिमाणों में प्रायः एक यव से लेकर पाँच यव तक का अन्तर होता है। इन परिधियों में से प्रथम क ख क परिधि द्वितीय से जितनी अधिक हो तो उसी अनुपात से सम्बन्धित जातक में उच्च कार्य-क्षमता, कर्मठता, परिश्रमप्रियता एवं व्यावहारिकता की प्रवृत्ति के दर्शन होंगे, किन्तु यदि द्वितीय परिधि च छ च प्रथम से अधिक लम्बी हो तो जातक विचारवान, विश्लेषक, ज्ञानी एवं विद्वान होते हुए भी अकर्मण्य, अव्यावहारिक एवं आलसी होने के कारण जीवन में अपेक्षाकृत असफल ही रहता है।

मान (भार)

सामुद्रिक शास्त्र में मानव शरीर के वजन या भार को मान संज्ञा के नाम से सम्बोधित किया जाता है। साधारणतया सम्पूर्ण शरीर को तराजू या वैज्ञानिक काँटे पर तौल कर भार के आधार पर स्वास्थ्य, कार्यक्षमता, स्वभाव एवं चरित्र आदि की प्रवृत्तियों का अनुमान सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, प्राचीन भारतीय आचार्य एक निश्चित आकार प्रकार के पात्र को जल से भरकर सम्बन्धित जातक को उसमें बैठा देते थे जातक के बैठने से जो जल ढुलक कर बाहर निकल जाता था, उसी जल के भार के अनुसार वे विभिन्न मान जैसे परिणाह, ऊर्ध्वमान एवं उच्छ्रय आदि निकालते थे एवं उसी मान विशेष के आधार पर जातक का शुभा-शुभ फल भी निर्देश करते थे।

किसी भी विज्ञान के अध्ययन एवं परीक्षण हेतु सम्पूर्ण शरीर का भार तो कई प्रकार से ज्ञात कर कार्य चलाया जा सकता है किन्तु मानव को जीवित रखे रह कर, उसके मस्तक को धड़ से अलग कर तोलना सम्भवतः उच्च चिकित्सा विज्ञान को छोड़ कर, अन्यत्र असम्भव है।

अतः मुखाकृति-विज्ञान के अन्तर्गत मान-तत्व को इस दृष्टि से पूर्ण व्यावहारिकता प्रदान करना असम्भव है। क्योंकि हम अपने ज़ातक के मस्तक मान हेतु उसके सिर को धड़ से विलग कर कभी नहीं तोल सकते, इसलिए सामान्यतया जातक के सम्पूर्ण शरीर को ही तोल कर उसके कुल भार का ४० वाँ भाग मस्तक भार का अनुमान कर लिया जाता है।

इसके साथ ही जातक के उन्मान के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि उसके मस्तक का आकार-प्रकार उसके शरीर के आकार-प्रकार की तुलना में सन्तुलित है या नहीं। यदि एक सामान्य शरीर वाले

जातक के मस्तक का आकार सामान्य एवं सन्तुलित हो तो वह लगभग शरीर के भार का ४० वाँ भाग होगा, लेकिन यदि उसी जातक का मस्तकाकार सामान्य से अधिक बड़ा हो तो उपरोक्त भाग में भी कुछ वृद्धि हो जायेगी और यदि छोटी हो तो इसमें न्यूनता आ जायेगी।

मस्तक के बाह्य आकार-प्रकार से ही उसके अन्दर स्थिति मस्तिष्क के विकास की स्थिति का अनुमान स्थूल रूप से हो जाता है। विस्तृत मस्तक में प्रायः विकसित मस्तिष्क एवं संकुचित मस्तक में प्रायः अविकसित मस्तिष्क का होना भी सम्भावित है। इसी प्रकार बड़े मस्तक के मस्तिष्क का भार अधिक एवं छोटे मस्तक के मस्तिष्क का मान कम होता है। वैज्ञानिकों का अनुभव है कि एक मूर्ख व्यक्ति के मस्तिष्क का मान २ पौंड एवं एक विद्वान के मस्तिष्क का मान ३½ पौंड देखा गया है।

अतएव पाठकों से अनुरोध है कि मुखाकृति-विज्ञान के अन्तर्गत मस्तक के मान को साधारणतया मस्तक के बाह्य आकार-प्रकार के अनुसार आँक कर ही जातक को शुभाशुभ फल निर्देश करना चाहिए, क्योंकि प्रायः ग्रामीण तक इस बात को समझकर अक्सर कहते हैं कि "सिर बड़ा सरदार का और पैर बड़ा गँवार का।"

स्त्री विशेष फल—आकार के अनुसार मान के संदर्भ में भी नारी मस्तक एवं मस्तिष्क का भार तुलनात्मक रूप से सामान्यतया कुछ न्यून ही माना जाता है।

गति (चाल)

साधारणतया किसी मनुष्य के चलने के ढंग या पगोन्नति को गति अथवा चाल के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है, किन्तु सर्वांग लक्षण शास्त्र-सामुद्रिकम में उक्त चाल के अतिरिक्त मानव शरीर के अन्य स्थानों

एवं अवयवों जैसे कटिप्रदेश की लचक या हाथों के हिलने-डुलने का ढंग, गर्दन का मटकाव, होंठों का स्पन्दन, नाक के नथुनों का प्रसार एवं संकुचन अथवा नेत्रों की पुतलियों की गति तथा पलकों के झपकाने की मात्रा आदि की स्थिति को गति या चाल अथवा Movement कहा जाता है तथा उसी के आधार पर सम्बन्धित जातक के स्वभाव, चरित्र एवं कार्यक्षमता आदि का अनुमान लगाया जाता है।

यहाँ हम गति तत्त्व के अन्तर्गत मुख सामुद्रिक के क्षेत्र में आने वाले प्रधान अंगों का उनकी गति-लक्षणानुसार विवेचन करेंगे।

ग्रीवा गति

जो जातक वार्तालाप के समय अपनी गर्दन को बिल्कुल आगे-पीछे या दायें-बायें नहीं करते अथवा ललाट पर बल डालकर अत्यन्त मन्थर गति से 'हूँ', 'नहीं' या ठीक है' आदि संक्षिप्त शब्दों के साथ क्वचित गर्दन को हिलाते भर हैं, वे प्रायः अपने 'अहं' से अधिक पीड़ित होते हैं। उन्हें ज्ञान, मान, सम्पत्ति, पद या सौन्दर्य आदि में से किसी एक या एक से अधिक का दर्प होना सम्भव है। अक्सर आप में से कई पाठकों ने अनुभव किया होगा कि इस प्रकार के अहंकारी वर्ग के लोग प्रायः आप द्वारा नमन करने पर अभिवादन का उत्तर बिना हाथ उठाये 'हूँ' शब्द के साथ या केवल गर्दन के एक हल्के-से झटके से देते हैं। इन सब लक्षणों के पार्श्व में उनका अहं छुपा रहता है जो उन्हें नतमस्तक या करबद्ध होने से रोकता है।

इसके विपरीत नम्र, उदार, सरल एवं सहिष्णु स्वभाव एवं चरित्र के व्यक्ति प्रायः चर्चा की परिस्थिति एवं अवसर के अनुसार उचित सद्भावना एवं आदरसूचक किन्तु संक्षिप्त शब्दावली के साथ ग्रीवा को आगे-पीछे हिलाते हैं, साथ ही नमस्कार का प्रत्युत्तर भी वे करबद्ध हो विनम्र भाव में ही देते हैं। उनके चेहरे पर उपरोक्त समय पर अहंकारी वर्ग की तरह शुष्कता नहीं होती अपितु एक सहज मुस्कान खिल जाती है।

दूसरी ओर एक नवनीत लेपन कला विशारद, चाटुकार, खुशामदी या दुमहिलाऊ व्यक्ति प्रायः बातचीत के समय, बात को केवल सुनकर, समझने से पूर्व ही ग्रीवा को विशेषकर दायें-बायें घुमाकर 'जी हाँ' 'यस सर'

शब्द कहने के आदी होते हैं। अपने मालिक के, दिन में रात या रात में भी दिन कहने पर वे वही कह देते हैं जो उनके 'आका' कहते हैं। असत्य को असत्य कहने का इनमें साहस ही नहीं होता। ऐसे स्वार्थी लोग, जहाँ मालिक के कमरे में भीगी बिल्ली के समान तलुए सहलाते हैं, वहाँ वे कमरे के बाहर बनावटी शेर की तरह गुर्राते भी हैं।

अपने चारों ओर बड़े धीरे-धीरे तथा डरते-घबराते हुए अर्थात् रुक-रुक कर ग्रीवा घुमाने वाले जातक भयभीत या भीरु होते हैं। यदि किसी जातक की ग्रीवा गति सदैव इसी प्रकार की रहती हो तो यह निश्चित मान लीजिये कि उसके जीवन का दायरा बड़ा सीमित है, जिसके बाहर वह खुलकर अपने आपको प्रस्तुत नहीं कर सकता। कभी-कभी ऐसे जातक नारी सुलभ गुण से भी पूर्ण होने के कारण संकोची या भीरु रहते हैं। इसके साथ ही कुछ अपराधी भी अपने को छुपाने हेतु इस प्रकार के हो सकते हैं। अतः इस प्रकार के लोगों की अन्य चेष्टाओं के साथ ग्रीवा गति का भी सामञ्जस्य स्थापित करते हुए स्वभाव एवं चरित्र का निर्धारण करना चाहिए।

चंचल, उच्छृंखल एवं चरित्रहीन व्यक्तियों की ग्रीवा कभी स्थिर नहीं रहती। ऐसे लोग सदैव ऊपर-नीचे, दायें-बायें एवं चारों ओर सदैव अपनी गर्दन घुमाते ही रहते हैं। इनकी ग्रीवा का कोई भरोसा नहीं होता। वे लोग बात किसी से करेंगे और नजरें एवं ग्रीवा का रुख कहीं और रखेंगे। ऐसे लोग चंचल चित्त, कामी, नटखट, अविश्वसनीय एवं असफल होते हैं, क्योंकि वे अपना मस्तिष्क किसी एक विषय पर केन्द्रित करने में अक्षम होते हैं। प्रायः प्रणय के मामलों में इन्हें निराशा ही अधिक हाथ लगती है।

ग्रीवा गति में एक विशेष प्रकार की लचक, लहजा एवं अदा आदि अक्सर उन लोगों में दृष्टिगोचर होती है जो नृत्य एवं संगीत कला के क्षेत्र में रुचिवान होते हैं। ऐसे जातक की कुछ ऐसी आदत हो जाती है कि साधारण बातचीत के समय भी वे अपनी ग्रीवा को उसी रूप से गति प्रदान करते हैं जैसे कि वे मंच पर हों। इसके साथ ही अभिनय कला में रुचि रखने वाले जातक में उपरोक्त बातें पूर्णरूपेण तो नहीं होतीं, किन्तु इनके कुछ गुणों के साथ उनकी ग्रीवागति में एक विशेष नाटकीयता देखने को मिल सकती है।

अविकसित बुद्धि, उन्मादग्रस्त या मूर्ख व्यक्ति अपनी गर्दन को या तो ठूँठ जैसी स्थिर रखते हैं अथवा किसी बात को बिना सुने-समझे बेमतलब या समय-असमय किसी भी दिशा में, किसी भी ओर, किसी भी कोण से, धीरे-धीरे या जोर-जोर से हिला-डुला देते हैं। इनकी ग्रीवागति की स्वीकृति या अस्वीकृति का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि वह गति, मस्तिष्क से अपना कोई भी सम्बन्ध नहीं रखती। ऐसे जातक की ग्रीवा गति एवं मस्तिष्क गति में असन्तुलन बना रहता है।

सौम्य, गम्भीर, बुद्धिमान, सतर्क एवं धैर्ययुक्त व्यक्तियों की ग्रीवा गति धीमी, सन्तुलित, परिस्थिति एवं अवसर के अनुकूल, प्रभावशाली एवं आकर्षक होती है। वे ऊपर-नीचे, आगे-पीछे या दायें-बायें बड़ी शान्ति से सकारात्मक या नकारात्मक मौन उत्तर के साथ अपने ग्रीवा प्रदेश को गतिमान करते रहते हैं। ऐसे जातक अनुशासनप्रिय, उदार, विश्वस्त एवं अच्छे मार्गदर्शक होते हैं।

मुख गति

सामान्यतः चेहरे की बाह्य संरचना में होंठों का स्थान सर्वप्रमुख होता है। इनकी संख्या दो होती है तथा यह एक ऊपर एवं दूसरा नीचे होता है। मुख की गति के आधार पर सम्बन्धित व्यक्ति के होंठों का खुलना तथा बन्द होना, संकुचन तथा प्रसारण एवं स्पन्दन आदि को देखकर भी उसके स्वभाव एवं चरित्र का निर्धारण किया जाता है। प्रायः उन्मादग्रस्त या अत्यधिक विचारनिमग्न व्यक्ति अपने होंठों को अक्सर स्पन्दित करते रहते हैं। उनके शरीर की नाड़ियाँ विचारों के साथ होंठों पर प्रतिबन्ध नहीं रख पातीं, अतएव मस्तिष्क में उठते विचार-प्रवाह को वे मुख से भी बुदबुदाते रहते हैं। ऐसी स्थिति में होंठों में विचार-तरंगों के साथ स्वयं एक स्पन्दन होने लगता है। कभी-कभी यही आदत अधिक विकसित होने पर अस्पष्ट बुदबुदाहट के स्थान पर स्पष्ट एवं जोर से बड़बड़ाने की प्रवृत्ति हो जाती है। अक्सर ऐसे लोग निद्रावस्था में भी अवचेतन मस्तिष्क में उठने वाले विचारों को नींद में ही बड़बड़ाकर स्पष्ट कर देते हैं। ऐसे जातक हृदय के उदार, भोले-भाले, निस्वार्थी एवं बुद्धियुक्त भले ही हों, किन्तु गोपनीय तथ्यों को गुप्त रखने में प्राकृतिक रूप से असमर्थ होते हैं।

क्रोधी, उत्तेजित, आवेशी एवं अस्थिर स्वभाव एवं प्रकृति वाले जातक प्रायः अपने निचले होंठ को ऊपर के दाँतों से दबाते या काटते रहते हैं। इनके होंठों को गति प्रदान करने में दांत महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं। कभी-कभी यह प्रवृत्ति अधिक विकसित होने पर वे अपने ऊपर-नीचे के दाँतों को जोर से कसे रहते हैं तथा दोनों होंठों को भी भींचे रहते हैं। मुख की यह गति इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि सम्बन्धित जातक का क्रोध, उत्तेजना व आवेश अपने चरमोत्मकर्ष पर है, किन्तु किसी विशेष परिस्थिति के कारण वह उसको व्यक्त करने में असमर्थ है या व्यक्त करने के समय एवं परिस्थिति की तीव्र उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहा है अथवा उस सम्बन्ध में किसी भावी योजना का मन ही मन सूत्रपात कर रहा है।

उपेक्षा, घृणा, ईर्ष्या, डाह एवं हीन स्वभाव के व्यक्ति भी सामान्यतया किसी भी व्यक्ति की उन्नति, ख्याति या प्रशंसा सुनने के पक्ष में नहीं होते। प्रायः ऐसे लोग किसी भी व्यक्ति की उपरोक्त सम्बन्ध में चर्चा सुनते या करते समय अपने दोनों होंठों को दायें अथवा बायें खींचकर मुँह बिगाड़ते हैं या बिचकाते हैं। ऐसे जातक मन ही मन कुढ़ते या जलते रहते हैं, परिणामस्वरूप उनका स्वभाव कुछ ऐसा हो जाता है कि वह स्वयं जीवन में आगे बढ़ने का प्रयास नहीं करते हैं। इनमें क्रियात्मक प्रवृत्ति की अपेक्षा विध्वंसात्मक प्रवृत्ति कुछ अधिक विकसित होती है। वे लोग अविश्वसनीय, अमार्गदर्शक एवं खुराफाती होते हैं।

अविकसित मस्तिष्क वाले, असभ्य तथा पशु प्रवृत्ति के जातक अपने मुख को समय, परिस्थिति एवं संदर्भ के प्रतिकूल गति प्रदान करते हैं। वेदना के संदर्भ में वे लोग निचले होंठ को आगे बढ़ा देते हैं या खुशी के अवसर पर बिना सहज मुस्कान के अपने सूखे होंठों पर जबान फिराने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि उनके होंठों की गति बेमौसम मल्हार गाती रहती है। ऐसे जातक से सहानुभूति, सहयोग या कोई आशा रखना केवल एक मृगतृष्णा मात्र होती है। यदि इनमें मूर्खता की मात्रा का अधिक समावेश हो जाय तब तो वे संयोग के समय रोने एवं वियोग के समय हँसने तक की भूमिका का भी अच्छा-खासा निर्वाह कर सकते हैं।

लेकिन इन सबसे अलग ज्ञानी, बुद्धिमान, सभ्य, गम्भीर एवं सौम्य

व्यक्ति समय, स्थिति एवं संदर्भ के अनुसार अपने को उसमें ढालकर सुखपूर्ण वातावरण में मन्द-मन्द मुस्कान, खुशी के अवसर पर खिलखिलाहट एवं दुःख के अवसर पर खिन्नहृदयता का परिचय दे, अपने होंठों को वैसी ही गति देता है जो अनुकूल हो। ऐसे जातक क्रियात्मक, उदार, सहयोगी, स्नेही, मार्गदर्शक एवं विश्वस्त होते हैं।

प्रायः होंठों की गति के अनुसार ही गाल भी गतिशील होते हैं। जिनके आधार पर ही 'गाल फुलाना' या 'गाल बजाना' आदि मुहावरे प्रयुक्त किये जाते हैं। अतः गालों के विषय में होंठों की गति से ही अनुमान कर लेना चाहिए।

नासिका गति

सभी व्यक्तियों की नाक में सामान्यतः कोई स्पष्ट एवं विशेष गति तो नहीं होती, किन्तु फिर भी कुछ व्यक्तियों के नथुनों में एक विशेष स्पन्दन या फड़कन-सी स्पष्ट प्रतीत होती है। जिस जातक की नासिका में स्पन्दन होता हो वह प्रायः हठी, चंचल, आवेशी, सतर्क, कामी या धूर्त होता है।

कर्ण गति

नासिका के समान कानों में भी कोई स्पष्ट एवं सामान्य गति नहीं होती, किन्तु दो ऐसे जातकों का परिचय मुझे प्राप्त है जो अपने बाह्य कर्ण के ऊपरी छोर को स्पन्दित कर लेते हैं। इनमें से एक की अध्यापन एवं संगीत में रुचि है तथा प्रकृति में मादक द्रव्यप्रियता, वासना, आवेश एवं परिश्रम तथा दूसरे में आलस्य, विलासिता, नाटकीयता एवं लोभीपन है।

नेत्र गति

सभी मनुष्यों के नेत्रों में गति होती है। नेत्र गति दो प्रकार की होती है। प्रथम पलकों का स्पन्दन एवं द्वितीय पुतलियों का घूमना।

पलकों के स्पन्दन की गति मात्रा से जानी जाती है। मात्रा को स्पष्ट करते हुए महर्षि समुद्रेण कहते हैं कि—"जितने समय में, सामान्य गति से, हाथ जंघा का स्पर्श कर ग्रीवा तक आवें उसे मात्रा काल कहते हैं।"

यहाँ हम पलकों की गति लक्षण का फलादेश फल के आधार पर करेंगे,

जो मात्रा की अपेक्षा अधिक सरल एवं सुविधाजनक है।

लगभग ५ पल में पलकें झपकने वाले द्रव्य, वैभव एवं समृद्धि से हीन होते हैं। १० पल में पलकों को स्पन्दित करने वाले परजीवी पराश्रयी एवं सेवक होते हैं। १५ पल में पलकों को गतिशील करने वाले भौतिक सुख-सम्पन्न, मध्यायु एवं चतुर होते हैं। २० पल में एवं २५ पल में पलकों को गति प्रदान करनेवाले मन केन्द्रीयकरण, शक्तिसम्पन्न, विकसित मस्तिष्क, स्थिर बुद्धि, उदारतापूर्ण, आयुष्य एवं प्रभावशाली होते हैं। ऐसे जातक योग या हिप्नोटिज्म में भी दूसरों की अपेक्षा अधिक सफल होते हैं।

उपरोक्त विवरण में ५ पल बराबर १ मात्रा का अनुमान किया गया है।

एकाग्रचित्त, ज्ञानी, चिन्तक एवं बुद्धिमान लोगों की पुतलियाँ प्रायः एक स्थान पर अधिक समय तक केन्द्रित एवं स्थिर रहने की क्षमता रखती हैं। ऐसे जातक सत्य, न्याय एवं शान्ति के समर्थक एवं दूध का दूध और पानी का पानी करने की शक्ति रखते हैं। यदि उनकी पलकें भी दीर्घ गतिमान हों तो वे योगी, साधक या दार्शनिक हो सकते हैं एवं यदि मध्यम गति से युक्त हों तो उनका सफल अध्यापक, वकील या व्यापारी होना सम्भव है।

धीमे-धीमे, मन्थर गति से सभी दिशाओं में विचरण करती हुई पुतलियाँ प्रायः सतर्क, भोंदू, रहस्यात्मक एवं जासूसी प्रवृत्ति के जातकों की होती हैं। प्रायः ऐसी पुतलियों के साथ यदि दीर्घ गतिमान पलकें हों तो वे लोग सफल सी० आई० डी० या उत्तम पारखी होते हैं। मध्यम तथा लघु गतिमान पलकें जातक में उपरोक्त गुणों को कम कर देती हैं। चारों दिशाओं में चचलता, गतिमान, अस्थिर पुतलियाँ मानव स्वभाव एवं चरित्र में उच्छृंखलता, उद्दण्डता, अस्थिरता एवं चरित्रहीनता की परिचायक होती हैं। ऐसे व्यक्तियों की पलकें प्रायः दीर्घ गतिमान नहीं होतीं। मध्यम गतिमान पलकें इनके दुर्गुणों को सन्तुलित करती हैं एवं लघु गतिमान पलकें 'करेला और नीम चढ़ा' वाली युक्ति को चरितार्थ करती हैं।

कभी स्थिर एवं कभी चंचल पुतलियाँ व्यक्ति के जीवन में प्रायः दो विचारधाराओं के द्वन्द्व का संकेत देती हैं। ऐसे जातक के जीवन में दो पहलू होना सम्भावित है। वे जो बाहर हैं, वह भीतर नहीं और जो भीतर

हैं वह बाहर नहीं होते। उनका जीवन धूर्तता, छल, कपट या नाटकीयता से पूर्ण हो सकता है। ऐसे लोग अभिनयकला के क्षेत्र में अधिक सफल हो सकते हैं। यदि इनकी पलकें दीर्घ गतिमान हों तो वे गम्भीर एवं शान्त, मध्यम गतिमान हों तो हास्य एवं व्यंग, लघु गतिमान हों तो उच्छृंखल एवं अश्लील पार्ट को अदा करने में कुशल होते हैं।

इसके साथ ही यह स्मरण रखना भी उचित होगा कि भौंहों तथा ललाट का घृणा या क्रोध के समय तनना या सिकुड़ना एवं आनन्द या खुशी के समय विस्तृत एवं विशाल होना प्रायः सामान्य होता है।

गति के द्वारा निष्कर्ष निकालने हेतु उपरोक्त सभी क्षेत्रों की गति के संयोग के आधार पर ही फलाफल निर्देश करना चाहिए, केवल किसी एक के अनुसार नहीं।

स्त्री विशेष फल—साधारणतया उपरोक्त सभी अंगों की गति का स्त्री वर्ग पर भी वही प्रभाव होता है, किन्तु नारी में चंचलता की प्रकृति पुरुष वर्ग की अपेक्षा कुछ अधिक होती है। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भावुकता, लज्जा, शील एवं संकोच आदि की दृष्टि से परखना चाहिए कि उक्त अंगों की गति उनके मूल गुणों से कितनी अधिक या कम है।

संहति (जोड़)

मानव शरीर द्वारा नित्य ही विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं, जिन्हें हम दृश्य रूप से चलना-फिरना, उठना-बैठना एवं खाना-पीना आदि कहते हैं। उपरोक्त विभिन्न क्रिया-कलापों के हेतु, मनुष्य को अपने शरीर के विभिन्न अंगों को, भिन्न-भिन्न स्थिति के अनुसार कई बार एवं कई प्रकार से मोड़ना, घुमाना या झुकाना पड़ता है। इन सबके हेतु प्रकृति

ने मानव शरीर के विभिन्न स्थानों पर सन्धि स्थानों का निर्माण किया है, जैसे घुटने, कोहनी, कमर, कंधे, ग्रीवा एवं जबड़े आदि। इससे मनुष्य को अपने कार्यों को करने में सरलता, सुविधा एवं निपुणता प्राप्त होती है अन्यथा वह ठूंठ की तरह होकर अगतिशील हो जाता है।

यह सन्धि स्थान आधार रूप में अस्थियों से जुड़े रहते हैं, जिन्हें ढंकने, बांधने आदि का काम नसें, तंतु या मांसपेशियाँ आदि करती हैं। सामुद्रिक शास्त्र में उपरोक्त सन्धि-बन्धों की स्थिति को संहनन, संघात या संहति कहते हैं।

यह एक तर्कसंगत तथ्य है कि यदि मानव शरीर के सम्पूर्ण संहति या जोड़-स्थान उपयुक्त रूप से बँधे हुए हों तो उसकी कार्यक्षमता में कोई गतिरोध, अवरोध, रुकावट या कठिनाई नहीं पड़ती, किन्तु इसके विपरीत यदि एक भी सन्धि-बन्ध सामान्य से कुछ असन्तुलित हुआ कि वेदना, पीड़ा, अक्षमता, अकर्मण्यता अथवा अगतिशीलता आदि का दुर्गुण उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में सम्बन्धित मनुष्य के मस्तिष्क में भी एक ऐसी प्रक्रिया उत्पन्न हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप इसका प्रभाव उसके स्वभाव, चरित्र एवं व्यक्तित्व पर भी अवश्य ही पड़ता है। अतः रचना तथा शरीर क्रिया में संहति का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। सम्पूर्ण सामुद्रिक शास्त्र में संहति की, कई सन्धि स्थानों के लक्षणों को परख कर उनके संकेतों के आधार पर निर्णय पहुँचने हेतु उपयोग किया जाता है। मुखाकृति-विज्ञान के क्षेत्र में प्रमुख रूप से शरीर के प्रधान जोड़ ग्रीवा बन्ध को ही इस तत्व के अन्तर्गत परखते हैं। वैसे आन्तरिक रूप में संहति का विश्लेषण कार्य आयुर्वेद क्षेत्र में आता है, अतः सामुद्रिक-शास्त्र में केवल बाह्य संहति का ही सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है।

बाह्य संहति लक्षण के अनुसार सामान्यतया पूर्व कथनानुसार ग्रीवा की ऊँचाई लगभग ४ अंगुल, परिधि २० से २४ अंगुल, व गति धीमी एवं अनुकूल, आकार, सुन्दर, स्थिति दृढ़, गठी हुई, मांसयुक्त स्निग्ध, केश एवं नसविहीन तथा त्रिवली से युक्त, सीधी एवं सरल होना श्रेष्ठ होता है। इसके विपरीत फूली हुई या शुष्क, नस एवं अति रोगयुक्त, अति मोटी-पतली, अति लम्बी-छोटी, वक्र, असामान्य ग्रीवा विकृत संहति के लक्षणों की परि-

चायक होती है, जो जातक के स्वभाव एव चरित्र में दुर्गुण का संकेत देती है।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से स्थूल रूप में एक दृष्टि में ग्रीवा संहति की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। संहति के लिए इतना ही जानना पर्याप्त होता है। ग्रीवा के अन्य शेष लक्षणों का विवरण हम विस्तार से ग्रीवा लक्षणों के अन्तर्गत करेंगे।

सार (सप्त धातु)

शरीर-विज्ञान के अनुसार शरीर का निर्माण असंख्य परमाणुओं (cells) से मिलकर होता है। यह परमाणु विभिन्न आकार-प्रकार के होते हैं, जो कई-कई समूहों में एकत्रित होकर मुख्य रूप से क्रमशः त्वचा (चमड़ी), रक्त (खून), मांस (गोश्त), मेद (चर्बी), अस्थि (हड्डी), मज्जा (अस्थि का आन्तरिक तत्त्व) एवं शुक्र (वीर्य) आदि सप्त धातुओं के नाम के सम्बोधित किए जाते हैं। सामुद्रिक शास्त्र में इन्हें ही सप्त सार कहते हैं, जो कि भारतीय दर्शन के अनुसार पंच मूलभूत तत्त्वों—क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—एवं आधुनिक विज्ञान के अनुसार क्रमशः प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट, फैट्स, मिनरल्स एवं वाटर आदि के सूक्ष्म एवं स्थूल रूप द्वारा निर्मित होते हैं। इस प्रकार दोनों ही सिद्धान्तों के अनुसार उपरोक्त धातु या सार मुख्यतः उपरोक्त पंच मूल तत्त्वों पर आधारित होते हैं। आज वैज्ञानिक परीक्षणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि शरीर में जल तत्त्व ५७ प्रतिशत, खनिज तत्त्व २० प्रतिशत तथा चर्बी, प्रोटीन एवं शर्करा २३ प्रतिशत के अनुपात से प्रायः रहते हैं। इन मूलाधार तत्त्वों में जहां न्यूनाधिक्यता हुई कि सप्त सारों में भी असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है और परिणामस्वरूप मनुष्य के स्वास्थ्य, स्वभाव, चरित्र एवं व्यक्तित्व पर उसका

प्रभाव पड़ता है।

यहाँ हम उपरोक्त सप्त सारों के सन्दर्भ में चिकित्सा-विज्ञान की गूढ़तम गहराइयों में न जाकर शरीर में इनकी स्थिति के सम्बन्ध में सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से, बाह्य लक्षण संकेतों के आधार पर इनका विवेचन करेंगे।

त्वचा—सम्पूर्ण चेहरे एवं शरीर की चमड़ी यदि स्निग्ध, सवर्ण कांतियुक्त, मृदु, सुन्दर एवं आकर्षक हो तो इस बात का स्पष्ट संकेत देती है कि सम्बन्धित जातक में आशा, महत्वाकांक्षा, साहस, धैर्य एवं कर्मशीलता की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत शुष्क, कठोर, अवर्ण एवं कुरूप त्वचा, अस्वस्थता, निराशा, आलस्य, आक्रोश, उत्तेजना, अधैर्य एवं निर्धनता की परिचायक होती है।

रक्त—इस तत्व के लाल एवं श्वेत कणों के द्वारा नित्य ही हमारे शरीर की क्षतिपूर्ति होती रहती है। यह सार प्रधान रूप से आहार द्वारा ग्रहण किये तत्वों तथा प्राणवायु के ऊपर निर्भर करता है। इस धातु का अनुभव, मुख्य रूप से नेत्र, जिह्वा की रक्तिमता, मलिनता, अवर्णता आदि यह स्पष्ट बतला देता है कि सम्बन्धित जातक में रक्तसार सामान्य, अधिक या न्यून है।

सामान्य रक्त धातु वाले जातक कर्मठ, आशावान, गतिशील, विचारक, उदार एवं सोद्देश्य होते हैं। अधिक रक्त तत्व वाले क्रोधी, अस्थिर, उच्च रक्तचाप वाले, घबराहट प्रवृत्ति के, धनी एवं भोगी होते हैं, जबकि न्यून रक्तचाप वाले दुर्बल, चिन्तित, निराश, निर्धन, असफल एवं उद्देश्यहीन होते हैं।

मांस—सामान्य मांस धातु वाले जातक का सम्पूर्ण शरीर तथा विशेषकर गाल एवं ग्रीवा गठी हुई, मांसल, उभरी-सी, दृढ़ एवं आकर्षक होती है। यह तत्व शरीर को पुष्टता एवं समतलता प्रदान करता है। यदि शरीर में इस सार की कुछ अधिकता हो तो व्यक्ति का शरीर स्थूलकाय, थुलथुल एवं भद्दा प्रतीत होता है। ऐसे जातक आलसी, सुस्त, आकर्मण्य, बहुभोजी, अविश्वस्त एवं बुद्धिहीन होते हैं। दूसरी ओर इस तत्व की सामान्य से अधिक न्यूनता वाले जातक अत्यधिक दुबले-पतले, रोग-ग्रस्त; चिन्तित,

कामी एवं क्रोधी हो सकते हैं।

चर्बी—यह हमारे शरीर की स्थायी शक्ति एवं उष्मा होती है। इसकी शक्ति कार्बोहाईड्रेट से लगभग १।। गुना अधिक होती है जो स्निग्धता से सम्पन्न रहती है। प्रायः अधिक चर्बी तत्व ऐसे समृद्ध व्यक्तियों के शरीर में अधिक हो सकता है जिनके आहार में मक्खन, घृत, तेल, मैदा एवं मांस आदि प्रचुर मात्रा में रहते हैं। सामान्य मेद धातुयुक्त जातक निरोग, स्वस्थ, लक्ष्यवान, रजोगुणी, विनम्र एवं गतिशील होते हैं। अधिक चरबी तत्त्व वाले मोटे, स्थूल, मंथर गति, हृदयरोगी, बहुभोजी, मुख पर सदैव ही एक तैलीय स्निग्धतायुक्त, आलसी, भोगी एवं मध्यायु होते हैं। न्यून चर्बीवान जातक कण्ठ या फुफ्फस रोगी, दुर्बल, शुष्क त्वचा वाले, प्रायः थोड़े परिश्रम से वेदनायुक्त होने वाले एवं संक्रामक रोगों से ग्रस्त हो सकते हैं।

अस्थि—हड्डियाँ मूल रूप में पृथ्वी तत्त्व प्रधान ही होती हैं। इनमें $\frac{5}{6}$ भाग खनिज द्रव्यों का होता है। अतः भौतिक शरीर का आकार अपने मूल में अस्थि धातु पर ही आधारित है। बिना अस्थियों के मानव शरीर की कल्पना नहीं की जा सकती फिर भले ही उसका अन्य कोई स्वरूप क्यों न हो।

सामान्य अस्थिसार वाले जातक का सम्पूर्ण शरीर एवं मुखाकृति सामान्य विकसित आकार-प्रकार की होती है। इनके हाथ-पैर, धड़ एवं सिर में अपने अनुपात से सन्तुलन होता है। ऐसे जातक सामान्य जीवन-स्तर के, सहयोगी, भौतिकोन्मुख, तर्कयुक्त तथा समय एवं परिस्थिति को पहचान कर चलने वाले एवं सामान्यतया साधारण दुःख-सुख में निर्वाह करने वाले होते हैं। यदि ऐसे जातक का मस्तक क्षेत्र अधिक विकसित हो एवं शेष शरीर भाग उस अनुपात से कम हो तो वे काल्पनिक, आदर्शप्रिय, दर्शनप्रेमी, उदार, सहिष्णु एवं लक्ष्मी से प्रायः हीन होते हैं, क्योंकि आकाश तत्त्व की उनमें अधिक प्रधानता हो जाती है। इसके विपरीत यदि मस्तक क्षेत्र लघु एवं अन्य क्षेत्र वृहदाकार हों तो ऐसे जातक स्वार्थी, सम्पन्न, भौतिकताप्रिय, क्रोधी, तामसिक प्रवृत्ति के एवं छल-कपट से पूर्ण होते हैं। इसी प्रकार यदि सम्पूर्ण शरीर क्षेत्र में अस्थिसार अविकसित हों तो वे

जातक अस्थिक्षय, चिड़चिड़े, अविकसित बुद्धि, आत्मक्रोध।, निराश एवं जीवन में प्रायः असफल होते हैं।

मज्जा—मज्जा एवं तन्तुओं का विकास मुख्य रूप से अस्थिसार पर ही निर्भर करता है। इसके न्यूनाधिक रूप का पता मस्तिष्क की चैतन्यता या जड़ता से सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है।

एक बुद्धिमान, कुशाग्र, विवेकी, शीलवान, सभ्य एवं उदार व्यक्ति में इस धातु का सन्तुलित एवं विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है, इसके विप-रीत मन्दबुद्धि, मूर्ख, उच्छृंखल, अविवेकी, अनुदार, स्वार्थी, धूर्त एवं तमो-गुणी व्यक्ति में इस तत्त्व का विकास उत्तम प्रकार का नहीं होता। इस तत्त्व को केवल उसके गुण से परखा जाता है, मात्रा से नहीं।

शुक्र—कहा जाता है कि वीर्य ही शरीर का राजा होता है। इसी-लिए इस पुरुषार्थ का प्रतीक ओजधारक एवं तेज का प्रणेता माना जाता है। 'प्रभूत कार्यकारिणो गुणे वीर्यम्' सुश्रुत के इस वाक्य से स्पष्ट होता है कि जिसमें विशेष कार्य करने का गुण-धर्म हो उसे वीर्य कहते हैं। यह शरीर को पुष्ट कर, रोगों से रक्षण करता है तथा मन में पुरुषार्थ की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है। प्राचीन ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य को अत्यधिक महत्त्व इसीलिए प्रदान किया गया है। भारतीय तत्त्ववेत्ताओं के अनुसार इस धातु का शरीर में जितना अधिक प्राबल्य होगा मनुष्य उतना ही अधिक कर्मठ, विचार-वान, पुरुषार्थी तथा अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति में सफल होगा। कुछ आधुनिक पाश्चात्य कामशास्त्रियों का कथन है कि वीर्य की अधिकता से भी शरीर में कई विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं, लेकिन यहाँ पूर्व और पाश्चात्य मत में कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है। बाह्य रूप से तो यह भ्रम का कारण हो सकता है, किन्तु यहाँ हम यह भूल जाते हैं कि ब्रह्मचर्य या वीर्यरक्षा व्रत, मन, वचन और कर्म से किया जाना ही अनिवार्य होता है। यदि भारतीयों के अनुसार उपरोक्त प्रकार से वीर्य रक्षा की जाए तो फिर यह धातु किसी भी परिस्थिति में हानिकारक नहीं हो सकती, किन्तु शरीर और हड्डियों का ऊपर से संयम किया जाए एवं मन ही मन मानसिक व्यभिचार किया जाए तो फिर यह धातु अमृत होते हुए भी विषतुल्य हो सकती है। पाश्चात्य विद्वानों के परीक्षण शायद ऐसे ही मनोदशा वाले

ब्रह्मचारियों पर आधारित हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार वीर्योत्पादक अवयवों का मस्तिष्क से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है एवं सभी काम-ग्रन्थियों पर वीर्य का प्रमुख अधिकार होता है। इस प्रकार वीर्यहीन जातक के चेहरे पर मलिनता, सुस्ती, निराशा, अपुरुषार्थ, बुद्धिहीनता एवं क्षीणकान्ति आदि के दर्शन होते हैं तथा वीर्यवान व्यक्ति तेजस्वी, साहसी, गम्भीर, बुद्धिमान, विश्लेषक, पुरुषार्थी, स्वाभिमानी, वीर, गतिशील, कर्मप्रधान, समृद्ध, सुखी एवं सफल होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आहार रस से रक्त एवं रक्त से वीर्य बनता है, उसी क्रम से यह शरीर में सब धातुओं से अधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रधान होता है।

स्त्री विशेष फल—समस्त मूल धातुओं का स्त्री शरीर पर भी लगभग वही प्रभाव होता है। अतः क्रम से उसी के अनुसार धर्म, रक्त, मांस, चर्बी, अस्थि, मज्जा एवं शुक्र (रज सहित) देखना चाहिए।

वर्ण (रंग)

उन्नीसवीं सदी का महान डच चित्रकार विन्सेन्ट-वान-गो कहता है कि—"प्रकृति में, विशुद्ध काले रंग का तत्त्व है ही नहीं, किन्तु श्वेत वर्ण की तरह वह भी लगभग प्रत्येक रंग में उपस्थित रहता है एवं असंख्य प्रकार के स्लेटी वर्णों को जन्म देता है, जिनकी झाईं और गहराई भिन्न-भिन्न होती है।"

वस्तुतः काले और श्वेत को छोड़ दें तो रंग रसायन के अनुसार स्थूल रूप से हमें क्रमशः लाल, पीला एवं नीला आदि तीन रंग मूलतः प्राप्त होते हैं। मानव शरीर एवं मुखाकृति पर भी प्रायः उपरोक्त तीनों वर्णों का अलग-अलग मिश्रण रूप हमें देखने को मिलता है, जिन्हें हम साधारण

बोलचाल की भाषा में गोरा, गेहुंआ एवं काला कहते हैं।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों के अनुसार शरीर वर्ण निर्माण में अन्य तत्वों के अतिरिक्त सामान्यतया शरीर की रासायनिक क्रियाओं के संचालक—"एंजाइमों"—का महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुख योग होता है। विभिन्न प्रकार के एंजाइम मानव शरीर में वंश-परम्परा, आहार-विहार, देश एवं काल के वातावरण तक तापमान आदि के अनुसार अपनी क्रियाओं-प्रक्रियाओं से मानव शरीर वर्ण को निर्धारित एवं प्रभावित करते हैं।

शरीर में स्थित एंजाइम पर तापमान का प्रभाव स्पष्ट करते हुए अमरीकी डॉ० कैनेथ एम० हाल्प्रिन कहते हैं कि—"धूप सेवन से त्वचा पर श्याम रंग चढ़ाने की प्रक्रिया की खोज के दौरान हमने देखा कि धूप में मौजूद परा-बैंगनी किरणों के सम्पर्क में आने के दो या तीन दिन बाद ही इस एंजाइम की मात्रा घटने लगी। वास्तव में यह देखा गया कि केवल तीन से पाँच दिन तक धूप सेवन करने से ही त्वचा गोर से श्याम होने लगी।"

इसी प्रकार यह भी विद्वानों द्वारा एक अनुभूत तथ्य है कि उष्ण कटिबन्ध के निवासी को यदि कुछ काल तक शीत प्रदेश में रखा जाय तो उसके श्याम वर्ण में भी शीघ्र ही पर्याप्त अन्तर पड़ने लग जाता है। अतएव सामान्यतया यह माना जाता है कि तापमान की दृष्टि से शीत प्रदेश में गोर वर्ण, समशीतोष्ण में गेहुँआ वर्ण एवं उष्ण प्रदेश में काला वर्ण प्रायः मनुष्यों का पाया जाता है। सभी प्रदेशों में इनमें अपवाद भी होना सम्भावित है, किन्तु साधारण तथा उपरोक्त बात अपने अधिकांश अंशों में सत्य ही सिद्ध होती है। भारतीय विद्वानों ने भारत में उक्त तीनों तापमानों के आधार पर सामुद्रिक विज्ञान में उपरोक्त तीनों वर्णों को प्रधानता प्रदान की है।

उपरोक्त वर्ण विभेद में प्रमुख रूप से दो एंजाइम प्रथम 'मैलेनिन' एवं द्वितीय 'ग्लूटाथायोन रिडक्टैस' बड़े उल्लेखनीय हैं।

शीत प्रान्त के निवासियों के शरीर में त्वचा के अन्दर 'ग्लूटाथायोन रिडक्टैस' नामक एंजाइम की मात्रा पर्याप्त होती है जिससे वे लोग श्वेत

या गौर वर्ण होते हैं। इसके विपरीत उष्ण क्षेत्र के रहने वालों के शरीर में मैलेनिन नामक एंजाइम की मात्रा प्रचुर रूप में होती है। इसी प्रकार समशीतोष्ण स्थान के निवासियों के शरीर त्वचा में उक्त दोनों एंजाइमों का सन्तुलित रूप हो सकता है जो दोनों वर्णों के मिश्रण अर्थात् गेहुँआँ रंग के लिए उत्तरदायित्व रखता हो।

अब चूंकि यह एंजाइम मानव शरीर की अति सूक्ष्म रासायनिक क्रियाओं के संचालन में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं, जिनका स्वाभाविक रूप से शरीर के परमाणुओं, इन्द्रियों, मन एवं मस्तिष्क आदि पर अपना प्रभाव पड़ता है, फलस्वरूप मानव के स्वभाव, चरित्र एवं व्यक्तित्व आदि को भी यह एंजाइम प्रभावित करते हैं।

इसी आधार पर सामुद्रिक शास्त्र में वर्णों के अनुसार मानव के स्वभाव, चरित्र एवं कार्यक्षमता आदि का भी विश्लेषण किया जाता है।

गौर वर्ण—भारतीय आचार्यों का कहना है कि इस वर्ण में मुख्य रूप से दो विभेद होते हैं। प्रथम में लाल एवं श्वेत का मिश्रण होता है जिसे हम गुलावी कह सकते हैं। ऐसे जातक के गालों के आसपास कुछ न्यून किन्तु केन्द्र में कुछ अधिक रक्तिम आभा फैली रहती है। ऐसे जातक मृदु स्वभाव, बुद्धिमान, साधारण परिश्रमी, श्वेत वर्ण या हल्के रंग पसन्द करने वाले, रजोगुणी एवं अध्ययन तथा विचरण-प्रेमी होते हैं। द्वितीय भेद में लाल और पीले का कुछ मिश्रण होता है जिसे मधु-पिंगल कहा जाता है। ऐसे जातक परिश्रमी, धैर्यवान, सौम्य, गम्भीर, रजोगुणी, भोगी, समृद्ध एवं व्यवहारकुशल होते हैं।

स्त्री विशेष फल—अनुभवी विद्वानों की यह मान्यता है कि उक्त श्वेत या पीले वर्ण से संयुक्त लाल रंग के नाखून, तालु, जीभ, होंठ, कर-तल, पदतल, नेत्र के छोर एवं योनि वाली स्त्री धन-धान्य से युक्त, उदार, माननीय एवं सौभाग्यवती होती है।

गेहुँआँ वर्ण—इसे कृष्ण वर्ण से युक्त कहा जाता है, क्योंकि यह एक-दम गहरा काला न होकर श्वेत एवं रक्त वर्ण से मिश्रित श्याम होता है। साधारणतया यह गौर एवं काले वर्ण के मध्य की स्थिति होती है। इसमें भी दो भेद होते हैं एक वह जो गौर वर्ण के अधिक सन्निकट और दूसरा

वह जो काले रंग के अधिक पास होता है। प्रथम के अन्तर्गत रजोगुण प्रधानता के साथ तमोगुण की हल्की-सी प्रवृत्ति होती है। ऐसे जातक अस्थिर अर्थात् कभी परिश्रमी और कभी सुस्त, सामान्य बुद्धि वाले, सामान्य समृद्ध तथा सामान्य अध्ययन-मनन एवं चिन्तनप्रिय तथा प्रायः उच्च मध्यम वर्ग के होते हैं। इसके विपरीत द्वितीय वर्ण वालों में उपरोक्त गुणों में कुछ अधिक न्यूनता आ जाती है, अतः उस वर्ग को निम्न मध्यम वर्ग में रखा जा सकता है।

स्त्री विशेष फल—इस वर्ण का प्रभाव स्त्रियों पर भी उसी प्रकार का होता है। फिर भी विशेष स्थिति में वे ललनाएँ गृहस्थी के उतार-चढ़ावों में निरन्तर संघर्षरत, धैर्यसम्पन्न, सहनशील, उदार, भोगी, चंचल एवं विश्वस्त होती हैं।

काला वर्ण—इस प्रकार के वर्ण में गहरा कालापन होता है तथा सहयोगी श्वेत एवं लाल वर्ण आदि की कुछ अधिक न्यूनता दृष्टिगोचर होती है। ऐसे जातक पूर्ण स्वस्थ, दृढ़, परिश्रमी, तमोगुणी एवं क्रोधी होते हैं। इनका बौद्धिक विकास प्रायः कम होता है जिसके परिणामस्वरूप वे सभी सामाजिक परम्पराओं, संस्कारों एव मर्यादाओं से दूर, उत्तेजित, हिंसक, कामी, हठी, आक्रामक एवं अपराधी आदि मनोवृत्तियों में एक या एक से अधिक दुर्गुणों के प्रतीक होना सम्भव है।

स्त्री विशेष फल—विशुद्ध काले रंग से प्रभावित स्त्रियों के सम्बन्ध में समुद्रेण का कथन है कि—अत्यधिक काले रंग के नेत्र, त्वचा, रोम, केश, होंठ, तालु एवं जीभ आदि जिन स्त्रियों के हों वे अंग के वर्णानुसार क्रम से न्यूनाधिक रूप से निम्न वर्ग में आती हैं।

स्नेह (स्निग्धता)

स्नेह तत्त्व का परीक्षण सामुद्रिक विज्ञान में दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम प्रकार के अन्तर्गत शरीर के विभिन्न वाह्य अंगों की मृदुलता, कोमलता, चिकनाहट, रूप, लावण्य एवं आकर्षण को परखा जाता है, किन्तु द्वितीय भेद में मनुष्य की मानसिक अनुभूति को ही उसकी अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों से समझा जाता है। वाह्य स्निग्धता को देखते समय ध्यान रखना आवश्यक होता है कि वह सब प्राकृतिक हो तथा कृत्रिम शृंगार से आच्छादित न हो।

वाह्य स्निग्धता—मुख सामुद्रिक के अन्तर्गत क्रमश: त्वचा, नेत्र, जिह्वा, दाँत एवं केश आदि की स्निग्धता को ही प्रमुख रूप से देखा जाता है। उक्त अवयवों की स्निग्धता एवं फल-निर्देश निम्न प्रकार से सम्भावित हैं।

त्वचा—प्राय: सामान्य स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों के सम्पूर्ण शरीर की त्वचा धातु एवं विशेषकर मुखमण्डल की त्वचा पर एक हल्की-सी तैलीय चिकनाहट स्वाभाविक रूप से रहती है जो त्वचा को ठंडी एवं गर्म वायु के प्रभाव से तड़कने, फटने आदि से सुरक्षित रखती है। इसके साथ ही यह स्निग्धता त्वचा को मृदुलता, कोमलता एवं लावण्य भी प्रदान करती है। इस स्निग्धता से युक्त जातक प्राय: स्वस्थ, आकर्षक, दयालु, नम्र एवं शीत प्रकृति के होते हैं। इसके विपरीत अस्निग्ध मुखाकृति वाले लोगों में तुलनात्मक रूप से उपरोक्त गुण अपेक्षाकृत न्यून हो सकते हैं।

नेत्र—आँखों की स्निग्धता का सही भावार्थ होता है मानव का सामान्य सन्तुलन तथा स्वच्छता, निर्मलता एवं कोमलता आदि की स्थिति। स्निग्ध

नेत्रों में पुतलियाँ सन्तुलित, आसपास से शुभ्र-श्वेत, मध्य में काली या नीली, दृष्टि-दोष से मुक्त तथा उचित मात्रायुक्त व पलकों से सम्पन्न एवं सरस होती हैं। ऐसे कमल पत्र-से पुरुष नेत्र तथा मृगनयनी या मीनाक्षी तुल्य-सी आंखें उदारता, शीतलता, विवेक, सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य एवं सम्पन्नता की परिचायक होती हैं। इसके विपरीत किसी भी दोष से युक्त आँखें उपरोक्त गुणों में से किसी एक या अधिक गुणों में दोष के अनुपात से कमी लाने का सकेत देती हैं।

जिह्वा—अस्थूल, लम्बी, पतली, सुवर्ण, तरल एवं स्वच्छ जीभ स्निग्ध कही जाती है लेकिन इसके साथ ही उसकी सामान्य एवं सन्तुलित गति भी देखनी चाहिए। उत्तम प्रकार की स्निग्ध जीभ वाले जातक प्रायः सरस, मृदु, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक वाणी के धनी होते हैं। ऐसे जातक प्रेम, विश्वास एवं श्रद्धा के पात्र, स्पष्टवादी, सहिष्णु एवं उदार प्रवृत्ति के होना सम्भव हैं। दूसरी ओर यदि जीभ शुष्क, स्थूल, अवर्ण अथवा मलयुक्त हो तो जातक उद्दण्ड, कपटी, अविश्वस्त, निम्न विचारधारा वाले एवं अकर्मण्य हो सकता है।

दाँत—इनकी स्निग्धता तो इनके ऊपर की परत के चमकीलेपन, चिकनाहट, शुभ्रता एवं ऊपरी छोर की सरलाकृति पर निर्भर करती है। मोती की झाईं-से चमकते, स्वच्छ, सफ़ेद, निर्मल एवं सामान्य दाँत जातक की उच्चारणक्षमता में वृद्धिकारक, आकर्षण के केन्द्र, प्रच्छन्न मुस्कान के प्रेरक एवं सौंदर्य के संयोजक माने जाते हैं। ऐसे जातक में नियम एवं क्रमबद्धता, स्वच्छता एवं स्वच्छन्दता, निष्पाप एवं निष्कपटता तथा चारित्रिक एवं बौद्धिक विकासशीलता के गुण होना भी असम्भव नहीं। इसके विपरीत मलिन, अवर्ण, असमतल एवं विकृत दाँतों वाले जातकों में उपरोक्त गुण प्रायः देखे जाते हैं।

केश—कहते हैं कि नहाये के बाल और खाये के गाल कभी नहीं छुपते। वास्तव में सन्तुलित आहार-विहार वाले लोगों के गाल उनके स्वास्थ्य की उत्तमता के द्योतक एवं स्नान तथा केश-विन्यास से युक्त व्यक्तियों के बाल आकर्षक प्रतीक होते हैं, किन्तु इसके अतिरिक्त भी बालों के विषय में कतिपय अन्य प्राकृतिक तथ्य होते हैं, उन्हीं के आधार

पर सामुद्रिक शास्त्र में उनका परीक्षण भी किया जाता है। स्निग्धता से सम्पन्न बाल, चाहे वे लम्बे हों या कुछ छोटे, काले हों या सफेद एवं घुंघराले हों या सीधे, अपने आप में स्वाभाविक रूप से ही चिकने, नरम, मुलायम एवं आकर्षक प्रतीत होते हैं। प्रायः आपने देखा होगा कि कुछ लोगों के बाल बिना तेल-कंघी के भी बिखरे-बिखरे, फिसलते एवं स्निग्धता से युक्त होते हैं, जबकि कुछ-व्यक्तियों के केश दिन भर भाँति-भाँति के साबुन एवं शैम्पू आदि से धोने व तेल-कंघी करने के बाद भी उस स्वाभाविक स्निग्धता को प्राप्त नहीं कर पाते। प्राकृतिक रूप से स्निग्ध, मृदु, कोमल, आकर्षक एवं सुन्दर बाल वाले जातकों में उदारता, गम्भीरता, स्नेह, श्रद्धा एवं आशा के गुण होते हैं। इसके विपरीत कठोर, रूखे एवं कड़े बालों वाले लोगों में एक चिड़चिड़ाहट, आवेश, अधैर्य, अस्थिरता एवं कठोरता की प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक है।

आन्तरिक स्निग्धता

इसका सम्बन्ध मूल रूप से मन एवं मस्तिष्क से ही होता है जिसके आधार पर ही स्वभाव एवं चरित्र का निर्माण होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि मन एवं मस्तिष्क की छाया, मानव के स्वभाव एवं चरित्र पर तथा उनका आभास उसकी आकृति, व्यवहार, अंग, चेष्टा, लेखन, वाणी एवं दृष्टि आदि पर, स्पष्ट दिखाई पड़ती है। लेकिन इससे भी अधिक मानव-मनोदशा का अधिक साकार रूप उसकी वाणी एवं दृष्टि में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। आगे हम उनका स्निग्धता के आधार पर ही विश्लेषण करेंगे।

वाणी—इसके द्वारा ही मानव-हृदय की अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होती हैं। इसकी स्निग्धता देखी नहीं जा सकती, अपितु केवल अनुभव की जा सकती है। जो जातक स्निग्ध वाणी से युक्त होते हैं, उनका स्वर सामान्य, सन्तुलित, मीठा, गम्भीर एवं प्रभावोत्पादक होता है। वे लोग सभ्य, चतुर, लक्ष्ययुक्त, सफल एवं गतिशील होते हैं। इसके विपरीत अस्निग्ध वाणीप्रधान जातक में वाणी अस्निग्धता के अनुपात से ही गुणों में न्यूनता होती है।

दृष्टि—कभी-कभी स्निग्ध वाणी वाले जातक 'मीठी-छुरी' भी सिद्ध हो सकते हैं, अतः उनकी वाणी की यथार्थता को आंकने के लिए नयनों की मूक वाणी को परखना चाहिए। यदि वाणी के साथ दृष्टि भी स्निग्ध हो तो सम्बन्धित जातक निश्चित रूप से विश्वस्त, मार्ग-दर्शक एवं उच्च गुणों से युक्त होगा लेकिन दृष्टि की स्निग्धता केवल अनुभव की जाती है, देखी नहीं जा सकती। इस हेतु दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। प्रथम तो वह दृष्टि स्निग्ध होती है जिसमें सच्चा स्नेह, श्रद्धा, विश्वास एवं समर्पण हो, जैसे एक विश्वस्त प्रियतमा या पत्नी संयोग के चरमोत्कर्ष क्षणों में अपनी दृष्टि से वह सब कुछ अभिव्यक्त करती है जो हार्दिक होता है, चाहे वह उस समय वाणी से मौन रहे। इसके विपरीत एक सोसाइटी गर्ल किसी ऐसी ही परिस्थिति में स्निग्ध वाणी से युक्त होते हुए भी अपनी दृष्टि से वह स्निग्धता नहीं दे सकती, क्योंकि उसके हृदय में वह सच्चा स्नेह, श्रद्धा, विश्वास एवं समर्पण नहीं होता। दूसरा उदाहरण दृष्टि स्निग्धता में ममता का होता है। एक माँ की वाणी में भले ही कठोरता हो, किन्तु दृष्टि में आत्मा का ममत्व रहता है जबकि एक सौतेली माँ—कुछ अपवादों को छोड़कर—प्रायः वाणी से भले ही स्निग्ध हो, किन्तु सच्ची ममतामयी दृष्टि से शून्य ही होती है। इसी प्रकार एक सच्चे मित्र की वाणी भी, भले ही अस्निग्ध हो, किन्तु उसकी दृष्टि में छल-कपट एवं स्वार्थ नहीं होता।

स्त्री विशेष फल—प्रायः आधुनिक प्रसाधनों के कारण स्त्रियों में स्वाभाविक बाह्य स्निग्धता को परखना दुष्कर ही होता है, अतएव ऐसे जातक का परीक्षण करते समय आन्तरिक स्निग्धता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसमें भी वाणी के साथ दृष्टि की स्निग्धता पर विशेष ध्यान केन्द्रित कर उसमें स्नेह, श्रद्धा, ममता, विश्वास एवं समर्पण की थाह लेनी चाहिए।

स्वर (ध्वनि)

"शब्द गुणकत्वमाकाशय्"—इस लक्षण के अनुसार हमारे शब्द (स्वर) आकाश की भाँति व्यापक और अखण्ड हैं। शब्द ही वह चिरब्रह्म नाद है जिसका सीधा सम्बन्ध आत्मा से होता है। इसमें भाषा, जाति, धर्म एवं संस्कार आदि कोई गतिरोध या व्यवधान उत्पन्न नहीं कर सकते।

प्रत्येक व्यक्ति की ध्वनि उच्चारण क्षमता का अपना ढंग होता है, जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, सुनने वालों पर अवश्य पड़ता है। दार्शनिकों के अनुसार एक अक्षर को उच्चारण एक कुण्डलिनी से होता है तो दूसरा अन्य से। इस प्रकार एक शब्द के उच्चारण में कई कुण्डलिनियों का सहयोग होता है। दूसरी ओर, इसी बात की पुष्टि करते हुए आधुनिक वैज्ञानिकों का कहना है कि शरीर की लगभग ७८ छोटी-बड़ी नसें जब एक-दूसरे से सम्बद्ध होती हैं तो एक शब्द उच्चारित होता है। उपरोक्त समस्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि स्वर का मानव-जीवन में अपना महत्त्व है। मानव के सभी क्रिया-कलापों का मूल मन है। मन के अनुसार ही वाणी प्रस्फुटित होती है, अतः यह तत्त्व मानव-स्वभाव एवं चरित्र का सबसे महत्त्वपूर्ण परिचायक होता है। मुख सामुद्रिक के अन्तर्गत स्वर के प्रमुख विभेदों से निम्न फल निर्देश सम्भावित हैं—

क्रोधरहित या अति तीव्र स्वर में प्रायः वे लोग बोलते हैं जो या तो स्वयं बहरे हों या सुनने वाले का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित करना चाहते हों या हठपूर्वक अपने थोथे ज्ञान को जबरन दूसरों पर थोपना चाहते हों अथवा किसी अन्य स्वर को सुनना न चाहते हों।

कुछ लोगों का स्वर अनुनादी होता है। उनके बोलने में कुछ ऐसा नाद होता है जो निरन्तर इतनी तीव्रता से प्रस्फुटित होता है कि प्रथम स्वर

स्पष्ट होते-होते दूसरा उसे ढँक लेता है। ऐसे जातक में दो गुण होते हैं। एक तो स्वर की शीघ्रता अर्थात् बात कहने में अधैर्य एवं दूसरा स्वर की अस्पष्टता। यह इस बात का प्रतीक होता है कि जातक में न तो किसी बात को सीमित रखने का माद्दा है और न ही उसमें किसी बात को स्पष्ट कहने का साहस है। ऐसे लोग किसी भी रहस्य को गोपनीय रखने में प्रायः असमर्थ होते हैं।

कई लोगों का स्वर कुछ जर्जरित-सा सुनाई पड़ता है। इसमें एक विचित्र-सी खरोंच, कर्कशता एवं टूटापन होता है। ऐसा स्वर सुनते समय कानों को कुछ ऐसा लगता है जैसे कोई धातु आपस में रगड़ खा रही हो, साथ ही बीच-बीच में ह्रस्व एवं दीर्घ उतार-चढ़ाव भी बड़े चुभते हुए-से प्रतीत होते हैं। ऐसे जातक क्लेशप्रिय, तमोगुणी, दुःखी, नीरस एवं लक्ष्य-हीन होते हैं।

प्रायः कई जातकों के स्वर में एक बुलन्दी होती है। यह गूंज गम्भीरता एवं नाद ऐसा प्रतीत होता है मानो दुन्दुभि, मृदंग, मेघ या सिंह गर्जन आदि में से कुछ एक हुआ हो। इस स्वर का आदि, मध्य और अन्त तीनों सन्तु-लित एवं गुंजनपूर्ण होते हैं। ऐसे जातक यम, नियम एवं संयमयुक्त, विद्वान, ज्ञानी एवं अध्ययन, मनन तथा चिन्तनप्रिय, गम्भीर, सौम्य एवं धैर्यवान तथा उज्जवल, उन्नत एवं उदार चरित्र व स्वभाव के होते हैं।

इसके विपरीत रूक्ष, भग्न एवं निम्न स्वर वाले जातक प्रायः कुछ नीरस, अप्रिय, रुक-रुककर, हकलाकर, असन्तुलित, अक्रमबद्ध, तारतम्यहीन, विषम, उथले, निरर्थक, अस्निग्ध, अनाकर्षक, अप्रभावोत्पादक एवं कुण्ठित होते हैं। उपरोक्त दुर्गुणों में से एक या अधिक दुर्गुणयुक्त स्वर या प्रायः अवि-कसित बुद्धि, अज्ञान, संकुचित प्रवृत्ति तथा अधैर्य, चंचलता, शठता, वाचा-लता, उच्छृंखलता, उद्दण्डता, अकर्मण्यता, धूर्तता, मूर्खता, निर्धनता या असफलता के परिचायक होते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि तर्कसम्मत, सार्थक, विषय के अनु-कूल, संदर्भयुक्त, ओजस्वी, गम्भीर, बुलन्द एवं सन्तुलित स्वर मानव-मन एवं मस्तिष्क की उच्च प्रवृत्तियों का द्योतक होता है तथा इसके विपरीत अन्य ध्वनि-उच्चारणक्षमता प्रायः निम्नवर्ग के हृदय की सूचक होती है।

स्त्री विशेष फल—प्रायः स्त्रियों का स्वर कुछ मन्द, मृदु, स्निग्ध, गुनगुनाहटपूर्ण एवं सरल होता है, जो उनके स्वभाव की उदारता, दया, स्नेह, श्रद्धा, समर्पण एवं ममता आदि का प्रतीक होता है। यदि नारी-स्वर में उक्त सामान्य स्वर की अपेक्षा बुलन्दी हो तो सम्बन्धित जातक में अहं, अनुशासन, नेतृत्व एवं पुरुषोचित गुण का प्राबल्य होना सम्भावित होता है, किन्तु यदि सामान्य से निम्न प्रवृत्ति का स्वर हो तो असत्य, निन्दा, भ्रम, कलह, वाचालता, आत्मप्रशंसा, दम्भ एवं मूर्खता आदि के दुर्गुण हो सकते हैं। समुद्रेण का मत है कि वीणा, वेणु, हंस, मयूर या कोकिल के समतुल्य नारी-स्वर शुभ एवं भग्न, जर्जर, विषम तथा फूत्कार जैसी स्त्री-ध्वनि अशुभ होती है।

प्रकृति (जड़चेतनत्व)

भारतीय दर्शन के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार आदि में विभक्त आठ प्रकार की अपरा अर्थात् जड़ प्रकृति एवं जीव रूप परा अर्थात् चेतन प्रकृति होती है। परमाणु सिद्धान्त के आधार पर भी यह बात तर्कसंगत बैठती है, क्योंकि प्रत्येक परमाणु में वाह्य जड़त्व एवं केन्द्र में चेतनत्व होता है। इसी के आधार पर भारतीय महर्षियों नें उक्त तथ्य को 'यत्पिडेतत् ब्रह्माण्डे' कहकर स्पष्ट किया है।

मानव शरीर में जड़ प्रकृति के उपरोक्त पांच तत्वों का दो रूपों में अस्तित्व होता है जिसे स्थूल एवं सूक्ष्म कहते हैं। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से उक्त दोनों स्वरूपों को एक-दूसरे से पूर्णतया विलग करके नहीं देखा जा सकता, तथापि फिर भी वैज्ञानिकों का अनुमान है कि सामान्यतया प्रत्येक तत्व में उस तत्व का सूक्ष्म $\frac{1}{2}$ भाग एवं शेष चार तत्वों का सूक्ष्म $\frac{1}{8}$ भाग रहता है। एक तत्व के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा—पृथ्वी तत्व के

एक स्थूल परमाणु में, पृथ्वीतत्व के सूक्ष्म रूप का $\frac{1}{2}$, जल तत्व के सूक्ष्म रूप का $\frac{1}{8}$, वायु तत्व के सूक्ष्म रूप का $\frac{1}{8}$ अग्नि तत्व के सूक्ष्म रूप का $\frac{1}{8}$ एवं आकाश तत्व के सूक्ष्म रूप का $\frac{1}{8}$ भाग होता है।

उक्त योजना में थोड़ा-सा भी न्यूनाधिक परिवर्तन मानव के मन एवं अहंकार में कई गुना अधिक अन्तर ला देता है। इसी अपरा प्रकृति को लेकर चेतन प्रकृति जीव विभिन्न प्रकार के स्वभाव एवं चरित्र को स्पष्ट करता है तथा इसी आधार पर दर्शनशास्त्र में सत, रज और तम तथा आयुर्वेद में कफ, पित्त और वात प्रकृतियों का विधान है।

वैसे पंच मूलभूत तत्व शरीर के निम्न स्थानों को स्थूल रूप से अधिक प्रभावित करते हैं—मुख्यतया हाथ और पैर पृथ्वी तत्व, कमर के आस-पास जल तत्व, पेट अग्नि तत्व, फेफड़े वायु तत्व एवं मस्तिष्क आकाश तत्व आदि। इसी प्रकार अस्थि, मांस, मज्जा, चर्म आदि पृथ्वी तत्व, रक्त, वीर्य आदि जल तत्व, शरीर उष्मा या तापमान अग्नि तत्व, प्राण, उदान, अपान एवं समान वायु आदि वायु तत्व एवं मस्तिष्क का शून्य क्षेत्र या हृदयाकाश आदि आकाश तत्व के स्थूल रूप माने जाते हैं।

इनमें पृथ्वी तत्त्व आधार प्रधान एवं आकाश तत्त्व मध्यम प्रधान होकर जल तत्त्व का बाहुल्य होने पर कफ, अग्नि तत्त्व का बाहुल्य होने पर पित्त एवं वायु तत्त्व का प्राबल्य होने पर वात प्रकृति के परिचायक होते हैं।

मुखाकृति परीक्षणकाल में जो जातक अपने क्रिया-कलापों एवं लक्षणों में स्थूल, मन्थर, दीर्घसूत्री एवं भोगी प्रतीत होता हो, वह पृथ्वी तत्त्व से अधिक प्रभावित माना जाता है। ऐसे व्यक्ति बोलने, चलने, बैठने, उठने आदि में बड़े धीमे होते हैं। इनका शरीर प्रायः मोटा ही होता है तथा चेहरा अति मांसल एवं वर्गाकृतिपूर्ण रहता है। इनके स्वभाव में एक निश्चलता, स्थिरता, मन्थरता एवं गतिहीनता आदि होती है। चारित्रिक दृष्टि से यह लोग मानसिक व्यभिचारी, स्वार्थी, कंजूस, अनुदार एवं असत्यप्रिय होते हैं पर फिर भी इनको आर्थिक हानि प्रायः कम ही होती है क्योंकि वे अपनी पूंजी का उपयोग गहरे सोच-विचार के पश्चात् करते हैं।

जल तत्त्व से प्रभावित व्यक्ति सामान्यतया स्थूल नहीं होते। इनका चेहरा वृत्ताकार, आकर्षक एवं सुन्दर होता है। इनके स्वभावमें अस्थिरता,

चंचलता, अधैर्य, भावुकता एवं कभी-कभी उच्छृंखलता भी होती है। इनकी कल्पनाशक्ति तीव्र होती है तथा बौद्धिक विकास भी उत्तम होता है, किन्तु अव्यावहारिकता के कारण वे अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य तक पहुँचने में प्रायः पिछड़ जाते हैं। ऐसे जातक को कफ, सर्दी एवं ठण्ड से सम्बन्धित रोग होना सम्भावित रहता है। इनको प्रायः ऐसे रोग अधिक भोग-विलास, मादक पेयप्रियता एवं असंयम के कारण होते हैं। इनका यश भले ही चन्द्र-किरणों की तरह फैले, पर उसमें कलंक अवश्य रहता है।

बात-बात में ही अचानक उत्तेजित, क्रोधित एवं सन्तुलन खो देने वाले जातक अग्नि तत्त्व से प्रभावित होते हैं। यह लोग चपल, प्रखर, अहंयुक्त एवं हठी होते हैं। प्रायः इनका चेहरा अमांसल किन्तु कांतिपूर्ण होता है। शरीर से भी यह प्रायः मोटे नहीं होते। क्रोधावस्था में वे अपना या अन्य का अहित कर सकते हैं क्योंकि अक्सर अविवेकी हो जाते हैं। सामान्य स्थिति में यह लोग अच्छा मार्गदर्शन, सहयोग एवं लाभ प्रदान कर सकते हैं। इस तत्त्व से प्रभावित व्यक्ति को प्रायः उष्ण रोग जैसे ब्लड-प्रेशर, अर्श, संग्रहणी अथवा चर्म रोग आदि हो सकते हैं। संगति एवं संस्कार इनका निम्न या मध्यम चरित्र का होना सम्भव है।

वायु तत्त्व से अधिक प्रभावित प्रकृति वालों की आकृति अण्डाकार तो होती ही है, साथ ही इनके स्वभाव में विचरणता, अस्थिरता, कई बातों को एक साथ जानने, समझने तथा करने की प्रवृत्ति भी होती है। यह सब विषयों में दखल रखने वाले परन्तु किसी भी विषय के पूर्ण ज्ञाता नहीं होते। ऐसे जातक को वायुप्रधान रोग जैसे वातविकार, पेट फूलना, अजीर्ण, मन्दाग्नि, रक्ताल्पता, प्रेतबाधा, अंगस्फुरण, कभी चेतना, कभी आलस्य एवं मस्तिष्क पीड़ा आदि प्रायः होते हैं। इसके विचारों की दौड़ में व्यावहारिकता पीछे रह जाती है, फलस्वरूप इनकी कई योजनाएँ पूर्ण नहीं हो पातीं। फिर भी ये लोग विशुद्ध कल्पना लोक में विचरण करने वाले नहीं होते, अतः जीवन में कुछ प्रतिशत सफल हो ही जाते हैं। चारित्रिक दृष्टि से यह पूर्ण विश्वस्त न भी हों फिर भी कुछ मामलों में विश्वास के पात्र होते हैं। वह बाहर कुछ भी करें किन्तु जिस थाली में खाते हैं प्रायः उसमें छेद नहीं करते। वृहद मस्तकाकृति तथा शरीर से कुछ क्षीण, आकाश प्रकृति

से अधिक प्रभावित होते हैं। वे प्रायः मौन, गम्भीर, विचारशील, एकान्त-प्रिय, चिन्तनयुक्त, दार्शनिक, अध्यापक या महात्मा होते हैं। इनका चाहे जो विषय हो वह सदैव उसकी तह में पहुँच कर सत्य की खोज करते रहते हैं। प्रायः इनमें आध्यात्मोन्मुखता की प्रवृत्ति अधिक होती है। ऐसे व्यक्तियों को अन्तिम समय में या उसके कुछ पूर्व मस्तिष्क सम्बन्धी रोग होना सम्भावित होता है। इनका चरित्र आदर्श, मर्यादा एवं संस्कारों से आच्छादित रहता है। कतिपय अपवादों को छोड़कर ऐसे जातक अधिकांश रूप में उत्तम मार्गदर्शक, सहयोगी, विश्वस्त एवं रक्षक होते हैं।

स्त्री विशेष फल—कफ प्रकृति की स्त्रियाँ सच्ची, मृदु, स्निग्ध, उचित शृंगारप्रिय, सहनशील, विनम्र, बहुसन्ततियुक्त, धर्मभीरु, मध्यम श्याम वर्ण, सौदर्न्यप्रिय, जलक्षेत्र में विचरण करने वाली, समय की पाबन्द एवं ऐश्वर्ययुक्त होती है।

पित्त प्रकृति प्रधान स्त्रियाँ प्रायः चंचल, पीत वर्ण नेत्र तथा जीभ रक्तिम, परिवर्तनशील आभा, ठण्डे और मीठे पदार्थ प्रिय, मृदु योनि, वाचाल, आत्म-क्रोधी, बुद्धिमान, मनमौजी, मध्यम प्रजननक्षमता तथा स्वतन्त्र विचारधारा एवं अहं से युक्त होती हैं।

वात प्रकृति प्रधान स्त्रियाँ चंचल, स्थूल देही, अस्निग्ध केश, नेत्र एवं दाँत, शुष्क त्वचा, कलहप्रिय, भोगी, विवर्ण, बहुभोजी, रूक्षयोनि, निन्दा-प्रिय, डरावने सपने देखने वाली, अधखुले मुख और नेत्र से सोने वाली एवं असमृद्ध वर्ग की होती हैं।

मृज्जा (कान्ति)

भारतीय सामुद्रिक शास्त्र में महर्षियों ने बाह्य लक्षण तत्त्वों के साथ आन्तरिक सूक्ष्म लक्षण तत्त्वों का भी समावेश किया है। कान्ति तत्त्व उन्हीं

में से एक है। आदिकाल से ही चित्रकला के क्षेत्र में प्रायः महान् व्यक्तियों के चित्रों में मुखमण्डल के चारों ओर एक कान्तिवृत्त चित्रित करने की परम्परा रही है। आज भी अक्सर राम, कृष्ण, ईसा, मोहम्मद एवं नानक आदि के चित्रों में कान्तिवृत्त खींचा जाता है, परन्तु क्या इस कान्तिवृत्त चित्रण के पार्श्व में यथार्थ वैज्ञानिक आधार है? अथवा इसे केवल परम्परानुसार चित्र के सौन्दर्य सौष्ठव में वृद्धि करने हेतु खींचा जाता है।

अस्तु, प्रथम हम कान्ति के आधुनिक व वैज्ञानिक पक्ष को लेंगे। दूरानभूति (टेलीपैथी) के क्षेत्र में आधुनिक वैज्ञानिकों ने जो परीक्षण अभी तक किये हैं उनके अनुसार मानव-मस्तिष्क से निरन्तर विद्युत् तरंगों का प्रसारण होता रहता है। यह विद्युत् चुम्बकीय तरंगें न्यूनतम एक सैण्टीमीटर लम्बी तथा कम से कम, कभी-कभी एक वाल्ट विद्युत् के दस लाखवें भाग के लगभग समतुल्य होती हैं। इन तरंगों को लोह-आवरण भी रोक सकने में अक्षम होता है। इससे स्पष्ट है कि मानव शरीर विद्युत् का प्रमुख केन्द्र मस्तक होता है।

विद्वानों का कथन है कि अग्नि तत्त्व का एक सूक्ष्म रूप विद्युत् है। मानव शरीर विद्युत् भी मानव शरीर के अग्नि तत्त्व पर निर्भर करती है। इस शरीर विद्युत् से ही मानव की कान्ति, तेज, छाया, आभा या ओरा (Aura) सम्बन्धित रहती है, जिसको अन्य तत्त्व भी अपने रूपानुसार प्रभावित करते रहते हैं।

प्रत्येक मनुष्य में इस तत्त्व का न्यूनाधिक रूप होता है। जैसा कि अरस्तु कहता है—"यह अदृश्य आभा मस्तिष्क के शून्य स्थानों की पूर्ति करती है।" यह होती अवश्य है किन्तु अपनी सूक्ष्मता के परिणामस्वरूप सभी को दिखलाई नहीं पड़ती। प्रायः वे लोग कान्ति को परखने में अधिक सक्षम होते हैं, जिनके मस्तिष्क में ललाट के पीछे स्थित, तृतीय नेत्र ग्रन्थि (Pineal Gland) अधिक विकसित होती है।

उपरोक्त सन्दर्भ में ट्यूज डे लाब सॉंग राम्पा की अनुभूत साक्ष्य उद्धरणीय है। आप अपनी पुस्तक 'दि थर्ड आई' में लिखते हैं कि—मैं तिब्बत-स्थित लामासारी में वर्षों रहा हूँ। वहाँ लामा के उत्तराधिकारी को वर्षों तक कई परीक्षणों में से गुजरना पड़ता है। इसी परीक्षण काल में एक

उत्तराधिकारी को कान्ति तत्त्व परीक्षण करने हेतु तैयार किया जा रहा था। लामासारी के वैद्यों ने मेरे सामने उस व्यक्ति के ललाट की शल्य-क्रिया कर तृतीय नेत्र ग्रन्थि को जागृत किया। आपरेशन के कुछ दिन बाद ही कुछ वन औषधियों से उसका घाव भर गया। तत्पश्चात् उस व्यक्ति में अपने दोनों साधारण नेत्रों से कान्ति देखने की क्षमता आ गई। उसने उस अद्भुत क्षमता के आधार पर कई अनजान व्यक्तियों के चेहरों की कान्ति का परीक्षण कर उनके स्वभाव, चरित्र एवं विचारों आदि के विषय में सत्य एवं स्पष्ट जानकारी देकर मुझे आश्चर्य में डाल दिया।

इससे यह सिद्ध होता है कि कान्ति होती भी है और उसे देखा भी जा सकता है, पर इसके लिए यह आवश्यक है कि तृतीय नेत्र ग्रन्थि जागृत हो। अब यह अलग बात है कि उसे जागृत कैसे किया जाय। सामान्यतया कुछ व्यक्तियों में यह प्राकृतिक रूप से जागृत रहती है। दक्ष चिकित्सक भी सम्भवतः उसे जागृत कर सकते हैं या फिर भारतीय योग-क्रियाओं में इसे जागृत करने की शक्ति है।

जो भी हो, उक्त सभी बातों से यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि कान्ति के सम्बन्ध में भारतीय दार्शनिकों, वैद्यों, चित्रकारों एवं सामुद्रिकवेत्ताओं आदि की मान्यताएँ केवल कल्पित नहीं हैं, अपितु सूक्ष्म वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं।

भारतीय विचारकों के अनुसार कान्ति तत्त्व क्रमशः सूर्य कान्ति, विष्णु कान्ति, इन्द्र कान्ति एवं यम कान्ति आदि पंच कान्तियों के नाम से जाना जाता है, जिनका अपने-अपने गुणधर्मानुसार अलग-अलग फल निर्देश होता है। महर्षि समुद्रेण ने उपरोक्त पंच कान्तियों को नियमानुसार स्पष्ट किया है—

"मानव शरीर कान्ति मनुष्य के सर्वांग लक्षणों पर इस प्रकार छाई रहती है, जिस प्रकार सूर्य के आस-पास उसका तेज, किन्तु मानव कान्ति सदैव एक-सी नहीं रहती, अपितु क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्व से समय और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होकर, तात्कालिक स्थिति की सूचना देती है।"

पृथ्वी कान्ति—भूवर्ण की, अवर्ण या कई वर्णों से युक्त कान्ति जब

मानव के मुखमण्डल पर आच्छादित रहती है तो उस काल से कुछ पूर्व से कुछ बाद तक सम्बन्धित जातक में अग्नि के साथ पृथ्वी तत्त्व के सूक्ष्म स्वरूप का अधिक प्रभाव रहता है। ऐसे समय में व्यक्ति भौतिक साधनों को जुटाने में कर्मरत होकर वांछित सफलता प्राप्त करता है। इस हाल में उसके स्वभाव में आवेश किन्तु धैर्य, कर्मठता किन्तु विलास, आन्तरिक अहं, अज्ञान एवं भोग किन्तु बाह्य विनम्रता, ज्ञान एवं धर्म आदि का विचित्र मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। प्रायः यह कान्ति—ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार—बुध की दशा में दिखलाई पड़ती है। यदि जातक की कुण्डली में बुध ग्रह उच्च का हो तो इसका फल सद्गुणों से युक्त एवं निम्न हो तो दुर्गुणों से पूर्ण प्राप्त होता है। कुल मिलाकर यह माना जाता है कि उपरोक्त कान्ति की अवस्था में सामान्यतया भौतिक लाभ प्राप्त होने की अधिक सम्भावना होती है।

जल कान्ति—विशुद्ध निर्मल जल के समान ही मृज्ज आप्य या जल कान्ति के नाम से सम्बोधित की जाती है। इस कान्ति काल में अग्नि के साथ जल तत्त्व का सूक्ष्म स्वरूप कुछ अधिक रहता है। शत्रु सम्बन्ध होने के कारण जल तत्त्व, अग्नि तत्त्व को इस काल में बाह्य रूप से तो कुछ शान्त कर देता है, किन्तु आन्तरिक रूप से वह सक्रिय रहता है, अतः इस कान्ति की अवस्था में सम्बन्धित जातक बाह्य रूप से तो शान्त, स्वस्थ एवं धैर्य सम्पन्न प्रतीत होता है किन्तु आन्तरिक रूप से कामाग्नि या विरहाग्नि में जलता रहता है। साथ ही मानसिक चंचलता, निराशा, अस्वस्थता एवं अधैर्य आदि भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। विद्वानों के अनुसार यह कान्ति चन्द्र या शुक्र ग्रह की महादशा में प्रायः स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। ग्रहों की स्थिति के अनुसार इस कान्ति काल में शुभाशुभ परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उक्त कान्ति काल में जीवन का कला एवं काम पक्ष अधिक सक्रिय होता है।

अग्नि कान्ति—जब मानव शरीर पर उषाकाल की-सी रक्तिम आभा या मूँगे के रंग के वर्ण-सी एक छाया दिखाई दे तो उसको अग्नि कान्ति के नाम से पुकारा जाता रहा है। इस काल में मानव प्रमुख रूप से अग्नि तत्त्व के सूक्ष्म स्वरूप से अत्यधिक प्रभावित रहता है। इस कान्ति की समयावधि

में सम्बन्धित जातक को साहस, शौर्य, विजय, यश, क्रोध एवं सफलता आदि की प्राप्ति होती है। ऐसे समय में व्यक्ति के स्वभाव एवं चरित्र में एक दृढ़ उत्कण्ठा, हठ, नेतृत्व एवं मदान्धता की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से प्रस्फुटित होती दिखलाई पड़ती है। इस कान्ति युग में जातक का शत्रु पक्ष निर्बल एवं मित्र पक्ष प्रबल होता है। अतएव वह एक तानाशाह के रूप में व्यक्त होता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार उक्त कान्ति सूर्य एवं मंगल की महा-दशा में प्रायः व्याप्त रहती है। यदि कुण्डली में उपरोक्त ग्रहों की स्थिति उच्च की हो तो जातक में उपरोक्त गुण अधिक प्रबल होते हैं, किन्तु निम्न स्थिति में प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषार्थ को क्षीण करते हैं। सारांश यह है कि यह कान्तिकाल जातक में कर्मठता, उत्तेजना, आवेश, ऊँची उड़ान एवं महत्वा-कांक्षा आदि की प्रवृत्तियों का परिचायक होता है।

वायु कान्ति—प्रायः लोग कहते हैं कि "उसके मुँह हवाइयाँ उड़ रही थीं।" इससें स्पष्ट है कि यह कान्ति शुभ काल की प्रतीक नहीं। यह कान्ति विवर्ण, हीन एवं अस्थिर होती है। इसे वायु कान्ति या मारुत कान्ति भी कहते हैं। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार यह मारण या बन्धन की द्योतक होती है। सामान्यतया इस कान्ति काल में अस्वस्थता, रोग, चिन्ता, अर्थ-हीन, निराशा, असफलता, दुर्भाग्य, अकर्मण्यता एवं पश्चात्ताप आदि में से एक या अनेक बातें होती हैं। प्रायः शनि, राहु या केतु ग्रह की दशा में यह कान्ति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। यदि उक्त ग्रहों की स्थिति कुण्डली में अच्छी है तो जातक को उपरोक्त फल न्यून मात्रा में ही प्राप्त होते हैं किन्तु इसके विपरीत अशुभ स्थिति में विकट परिणाम सम्भावित हैं। कुल मिलाकर यह कान्ति शुभ स्थिति एवं परिणामों की सूचक नहीं होती।

आकाश कान्ति—इसकी उपमा निर्मल स्फटिक मणि निभा के समान होती है। यह कान्ति इस बात का स्पष्ट प्रमाण देती है कि जातक में उस समय अग्नि तत्त्व के साथ आकाश तत्त्व के सूक्ष्म भाव का प्रावल्य है। यह कान्तिकाल जातक के विचारों को उसी प्रकार प्रसारित करता है जिस प्रकार रेडियो स्टेशन वाणी को विद्युत्-तरंगों (अग्नि तत्त्व) के माध्यम से ईथर (आकाश तत्त्व) में परिवर्तित कर प्रत्येक रेडियो सैट तक पहुँचाता

है। उपरोक्त समयावधि में व्यक्ति सौम्य, ज्ञानी, विचारक, दार्शनिक, धर्मगुरु, शिक्षक एवं नेता आदि-सा प्रतीत होता है। लोग उसके वचनों को वेद वाक्य मानते हैं तथा उसकी पूजा करते हैं। ज्योतिविज्ञान के अनुसार यह कान्ति प्रायः गुरु ग्रह की दशा में ही स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यदि जातक की कुण्डली में गुरु उच्च का हो तो वह उच्च पद को प्राप्त करता है अन्यथा केवल दम्भ, अहं, क्रोध एवं हठ का भागी होता है। कतिपय विद्वान् इसे व्योम्निकान्ति के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। संक्षेप में यह कान्ति ज्ञान, अध्ययन, मनन, चिन्तन, यश, महत्वाकांक्षा, उच्च अभिलाषा, आध्यात्मोन्मुखता एवं अभौतिक सुख की परिचायक होती है।

स्त्री विशेष फल—सामुद्रिकविदों का कथन है कि कान्ति तत्त्व महिलाओं को भी पुरुषों के समतुल्य ही फल प्रदान करता है। वायु कान्ति को छोड़ कर सामान्यतया समस्त कान्तियों में से किसी भी कान्तिकाल में जो स्त्री आकर्षक, शीलवान, मृदु, उदार, गम्भीर एवं लावण्यमय दिखलाई पड़े, वह सर्वश्रेष्ठ होती है। प्रायः पृथ्वी, जल एवं आकाश तत्व प्रधान कान्ति स्त्रियों के लिए अधिक शुभ फलकारक होती है।

गन्ध (बू)

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि प्रायः प्रत्येक स्त्री-पुरुष की देह से किसी न किसी प्रकार की गन्ध आती ही है। इस सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के अनुभव द्रष्टव्य हैं—

जीएस्ट—"प्रायः स्नान करने के बाद यह गन्ध और तीव्र हो जाती है, क्योंकि इससे त्वचा के छिद्र पूरी तरह खुल जाते हैं। यह गन्ध स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होती है।"

कैस्टेलिनी—"कांगो की हब्शी स्त्रियों में एक प्रकार की धीमी-धीमी बू होती है, जो अच्छी लगती है, किन्तु मोनबुट्ट स्त्रियों में एक प्रकार की तेज गन्ध होती है।"

एमिन—"मैं उनकी देह-गन्ध से ही विभिन्न जन-जातियों को पहचान सकता हूँ।"

हैवलॉक एलिस—"प्रायः हर जाति के लोगों में से किसी न किसी प्रकार की गन्ध होती है। अधिकतर नीग्रो लोगों में से एक प्रकार की तेज बू आती है; जो उनके गन्दे रहने की आदत के कारण नहीं होती। आस्ट्रेलिया के श्याम वर्ण लोगों की गन्ध नीग्रो लोगों की गन्ध से कुछ भिन्न होती है, यद्यपि कम तीव्र होती है। दक्षिण अमेरिकी इंडियनों की गन्ध योरोपियनों की गन्ध से तीखी होती है, फिर भी उतनी तीखी नहीं, जितनी नीग्रो लोगों की होती है। चीनियों की देह से कस्तूरी जैसी गन्ध आती है तथा कुछ लोगों की गन्ध लहसुन जैसी भी होती है।"

मैकब्रिज—"उस स्त्री की देह से मैथुन के दो दिन बाद तक गुलाब की खुशबू आती रहती थी।"

अमृता प्रीतम—"जवान औरत की देह से एक प्रकार की गन्ध निकलती है जिससे मर्द उसकी ओर खिंचे चले आते हैं।"

कल्याणमल्ल—"पद्मिनी की देह से कमल की, चित्रिणी की देह से मधु की, शंखिनी की देह से नमक की एवं हस्तिनी की देह से गजस्राव की गन्ध आती है।"

इसके साथ ही गन्ध के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का मत है कि—"दुर्भाग्य से पुरुषों में गन्ध सूँघने की शक्ति स्त्रियों की अपेक्षा कम होने के कारण वे इससे उतना प्रभावित नहीं हो पाते जितना कि स्त्रियाँ समझती हैं।"

जो भी हो, किन्तु इतना सत्य है कि मानव देह से गन्ध-प्रसारण होता अवश्य है, चाहे आप उसे अनुभव करें या नहीं।

वस्तुतः समस्त गन्धों के मूल में कोई न कोई रसायन ही आधार होता है। वैज्ञानिक इन गन्धदायी यौगिकों को 'एरोमेटिक' के नाम से सम्बोधित करते हैं, जिनकी संख्या सैकड़ों में मानी जाती रही है, किन्तु आधुनिक अमेरिकी जीवरसायनवेत्ता डा० जान ई० एमूर के नवीनतम प्रयोगों ने

भारतीयों के इस मत की पुष्टि कर दी है। उनके अनुसार भिन्न-भिन्न गन्धों का निर्माण मूलभूत सप्त गन्धों के अलग-अलग मिश्रण के परिणामस्वरूप होता है। प्रमुख सप्त गन्धों के नाम निम्न प्रकार हैं।

(१) कर्पूरी गन्ध (२) कस्तूरी गन्ध (३) पुष्पी गन्ध (गुलाब, कमल आदि के फूलों जैसी) (४) पुदीनाकी गन्ध (पान में खाई जाने वाली पिपरमेंट जैसी) (५) ईथरी गन्ध (अभी-अभी ड्राइक्लीनिंग किए वस्त्रों जैसी) (६) तीव्र गन्ध (सिरके जैसी) (७) पूति गन्ध (सड़ांध जैसी)

उपरोक्त सप्त गन्धों के भिन्न-भिन्न मिश्रणों की गन्धों का मानव देह में होना सम्भव है, जिनमें प्रथम तीन उत्तम, शेष तीन मध्यम एवं अन्तिम दो निम्न प्रकार की होती हैं।

कर्पूरी गन्ध—यह गन्ध अपने मूल रूप में विशुद्ध पृथ्वी तत्त्व से प्रभावित व्यक्तियों में ही होती है। ऐसे जातक प्राय: उच्चध्वनि, स्थिर प्रवृत्ति, भौतिक प्रकृति, मन्थर गति, विलासी, हँसमुख एवं सन्तोषी वृत्ति के होते हैं। प्राय: अपनी दीर्घसूत्री मनोवृत्ति के कारण इन्हें अपने लक्ष्य पर पहुँचने में विलम्ब होता है। केलि-कला में भी वे अक्सर दीर्घ समय तक आनन्द का उपभोग करते हैं। सामान्यतया हस्तिनी नारी इन्हें अधिक प्रिय होती है। इनका एकमात्र नारा होता है—खाओ-पियो और जियो। ऐसे व्यक्ति खाने के लिए ही जीवित रहते हैं, जीवित रहने के लिए नहीं खाते।

कस्तूरी गन्ध—जैसाकि इसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे जातक मृग के गुणों से युक्त होते हैं। ऐसे लोग प्राय: सुन्दर, आकर्षक, अल्पभोजी, चंचल, मृदु, सम्पन्न, भीरु, संगीतप्रिय, स्नेही, तीव्रगति एवं मित्रयुक्त होते हैं। इनको अपने इष्ट-मित्रों के साथ विचरण करना, उद्यानों तथा वनों में निरुद्देश्य घूमना, महफिलों का आयोजन करना, उदारता एवं त्याग के लिए सदैव तत्पर रहना एवं यश अर्जित करना आदि में अधिक रुचि होती है। सामान्यतया अपने हाव-भाव से स्त्रियों को आकर्षित करने में ये अधिक सफल होते हैं, परिणामस्वरूप भोग-विलास एवं ऐश्वर्य में अक्सर ही खोये रहते हैं। उनको परिणय की अपेक्षा प्रणय अधिक प्रिय होता है; इसी कारण इनके जीवन में सदैव परिवर्तन आते रहते हैं।

पुष्पी गन्ध—कमल एव गुलाब आदि के फूलों की गन्ध से युक्त देह

वालों में पृथ्वी के साथ जल तत्त्व का भी अद्‌भुत मिश्रण होता है। वे कभी स्थिर एवं कभी चंचल स्वभाव के दृष्टिगोचर होते हैं। प्रकृति की गोद में तथा जल क्षेत्र के तट पर इन्हें एक अनन्त सुख एवं शान्ति प्राप्त होती है। कल्पना, काव्य एवं चित्रकला में विशेष रुचि होती है। भावुकता, सरलता, स्नेह व प्राकृतिक शृंगार इनकी अपनी विशेषता होती है। प्रायः चित्रिणी नायिका ही इन्हें अधिक प्रिय होती है। श्वेत या हल्के रंग उनको अधिक आकर्षित करते हैं। सारांश यह कि वे हृदयप्रधान होते हैं, मस्तिष्कप्रधान नहीं।

पुदीनार्की गन्ध—ये जातक द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति के होते हैं। बाह्य रूप से इनके व्यक्तित्व को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे गम्भीर, सौम्य एवं शान्त हैं, किन्तु आन्तरिक रूप से इसके हृदय में आक्रोश, उत्तेजना, विद्रोह एवं अस्थिरता का उफान सदैव मचलता रहता है। ऐसे जातक में जल एवं अग्नि तत्त्व का विचित्र मिश्रण होता है। एसे व्यक्ति शान्तिमय क्रान्ति में विश्वास रखते हैं, किन्तु इस हेतु कथनी में विश्वास न रखकर करनी से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं तथा उसमें सफलता भी प्राप्त करते हैं। भौतिक सुख की दृष्टि से इनका जीवन प्रायः मध्यम रहता है।

ईथरी गन्ध—इस अद्‌भुत गन्ध वाले जातक परम्परावादी न होकर प्रगतिशील होते हैं, किन्तु अति नवीन के संमर्थक होने के कारण वे अपने सहयोगियों को साथ ले चलने में असमर्थ होते हैं। परिणामस्वरूप इन्हें सहयोगी से जो अपेक्षा होती है, वह नहीं मिल पाती, जिससे ये झुंझला उठते हैं और आवेश, उत्तेजना, क्रोध एवं जल्दबाजी के कारण स्वयं का तथा समाज का अहित कर बैठते हैं। इनमें कर्मठता, गतिशीलता, साहस एवं बुद्धि तो होती है, किन्तु तीव्रता, उत्तेजना, आक्रोश एवं अधैर्य के कारण वे प्रायः असफल होते हैं।

तीव्र गन्ध—आधारभूत रूप में यह गन्ध मानव के अविकसित मस्तिष्क, बुद्धिहीनता, असभ्यता, अस्निग्धता, अविवेक एवं उद्दण्डता की परिचायक होती है। उपरोक्त दुर्गुण मनुष्य की तीव्रता के अनुसार न्यूनाधिक हो सकते हैं। प्रायः ऐसी गन्ध वाले जातक निम्नतम वर्ग के होते हैं तथा उनमें केवल काम और क्षुधा ही होती है तथा उसका भी पाशविक रूप उनमें अधिक

साकार होता है। ऐसे जातक की रुचि शंखिनी नारी में अधिक होती है। ये अक्सर परिश्रमी, स्वस्थ, कुरूप, अनाकर्षक, संस्कारहीन एवं अमानवीय कृत्यों से युक्त होते हैं।

पूति गन्ध—यह गन्ध मानव के रचना तथा शरीर में असन्तुलन अस्वास्थ्य, रोग, निराशा, भय, अकर्मण्यता एवं दरिद्रता की द्योतक होती है। ऐसे जातक का शरीर महाव्याधियों से युक्त होता है, जिनसे छुटकारा पाना प्रायः दुष्कर ही होता है। यह गन्ध कफ, पित्त एवं वायु के अति असन्तुलन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। अक्सर चिकित्सालयों के घेरों में ही ऐसे व्यक्ति अपने जीवन की अन्तिम साँसें गिनते रहते हैं। यदा-कदा पूर्व-पुण्य के परिणामस्वरूप अथवा प्रबल आत्मचेतना से वे पुनर्जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

स्त्री विशेष फल—इस संबंध में हम भारतीय कामशास्त्राचार्य कल्याण-मल्ल के विचार पहले ही लिख चुके हैं। अब सामुद्रिकाचार्य समुद्रेण का मत उल्लिखित है।

वह कहते हैं कि—"वर वर्णिन्यापि न शुभा गत गन्धा कर्णिकार कलिकेव" गन्धहीन स्त्री चाहे सुन्दर भी हो तो भी कनेर की कली के समान व्यर्थ होती है। अस्तु, कस्तूरी व पुष्पी गन्ध से युक्त नारी सौभाग्यवती व उच्च चरित्र की होती है। दूसरी ओर तीव्रगंधा नारी चंचल, निर्लज्ज, दम्भी, क्रोधी एवं भोगी होती है, अतएव उसे मध्यम मानना चाहिए। उपरोक्त सभी से हीन, कड़वी, दुर्गन्धित बू वाली स्त्री स्वरूपवान होने पर भी निम्न चरित्र एवं स्वभाव की होती है। अतएव स्वरूप से अधिक नारी की गन्ध पर ध्यान देना उचित होता है।

क्षेत्र (विभाग)

सामुद्रिक शास्त्र में सम्पूर्ण शरीर के बाह्य रूप को दस भागों में विभाजित किया गया है। उसके अनुसार आठवां, नवाँ, दसवाँ क्षेत्र क्रमशः ग्रीवा, मुख व मस्तक पर आता है। मुखाकृति-विज्ञान में भी मुखमण्डल को इसी आधार पर प्रमुख रूप से तीन निम्न भागों में विभक्त किया जाता है—

(१) ललाट क्षेत्र—इसे मानसिक या उच्च विश्व कहते हैं। यह मानव के सतोगुण का परिचायक होता है।

(२) नासिका क्षेत्र—इसे भौतिक या मध्यम विश्व सम्बोधित किया जाता है। वह रजोगुणी प्रवृत्तियों का द्योतक होता है।

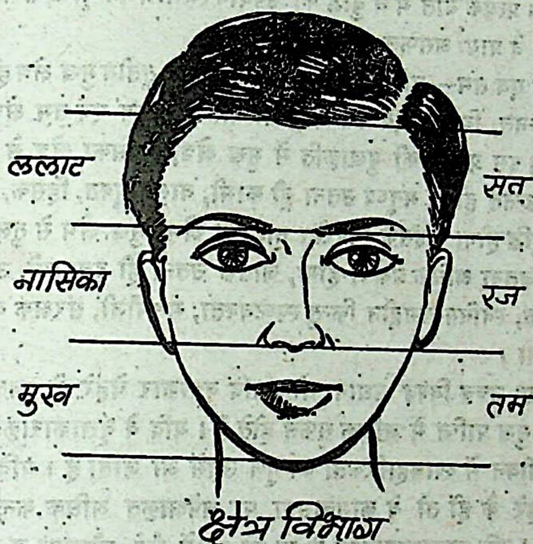
(३) मुख क्षेत्र—इसे जैविक या निम्न विश्व की संज्ञा प्रदान की गई है। यह मानव की तमोगुणी प्रवृत्तियों का सूचक होता है।

इस प्रकार उपरोक्त तीनों क्षेत्र मानव के शरीर, मन एवं आत्मा के दार्शनिक प्रतीक तथा सामुद्रिक शास्त्र के मानसिक (Mental world), व्यावहारिक,(Practical world) तथा आधारभूत विश्व(Basic world) कहे जाते हैं।

जातक की मुखाकृति पर दृष्टिपात करते ही स्पष्ट हो जाता है कि उसका कौन-सा क्षेत्र प्रक्षेपी एवं प्रधान है। उसी के अनुरूप उसका स्वभाव, चरित्र व व्यक्तित्व संभावित होता है। ललाट क्षेत्र का विकास व्यक्ति की मानसिक, बौद्धिक व सात्विक शक्ति का परिचायक होता है। नासिका क्षेत्र मानव की भौतिक, व्यावहारिक व राजसी प्रवृत्तियों का सूचक होता है। मुखक्षेत्र की स्थिति मनुष्य की जैविक, वासनात्मक व तामसिक इच्छाओं को प्रकट करती है।

प्रायः अधिकांश व्यक्तियों में दो प्रकार के विश्व के संयोगों की विकसित

स्थिति दिखाई पड़ती है। ऐसे लोग दो प्रकार की प्रवृत्तियों में समन्वय तथा सन्तुलन प्राप्त कर लेते हैं। दो विश्व के मिश्रण से निम्न प्रकार के व्यक्तित्व उभरते हैं। चित्र-११ एवं चित्र-२ में आकृति-अ देखिए।



चित्र क्रमांक-११

सत एवं रज—जिस जातक का ललाट व नासिका क्षेत्र उन्नत, विकसित, विस्तृत व प्रक्षेपी हो वह साम, दाम, दण्ड एवं भेद की नीति को समय व परिस्थिति के अनुसार उपयोग में लाकर जीवन में प्रायः सफल होता है। ऐसे व्यक्ति को ललाट क्षेत्र बुद्धि, ज्ञान व विचार तथा नासिका क्षेत्र व्यावहारिकता, चातुर्य व साहस प्रदान करता है। वह यश, धन व सुख तीनों को प्राप्त करके जीवन में अपने उद्देश्य तक पहुंच जाता है।

सत एवं तम—ऐसे जातक के ललाट एवं मुख क्षेत्र विकसित, विस्तृत, उन्नत एवं प्रक्षेपी होते हैं। ऐसे लोग शान्त, गम्भीर, धीमे, चतुर, चालाक, धूर्त, दम्भी, कामी, विचारवान, समय और स्थिति को परखने वाले तथा शीघ्र झुकने वाले होते हैं। इनकी बुद्धि एवं काम तत्त्व में परस्पर द्वन्द्व रहता है। कभी यह काम पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और कभी उसके दास दिखाई पड़ते हैं। समय पड़ने पर वे असत्य एवं अन्याय का सहारा भी ले सकते हैं। प्रत्येक बात में वे बुद्धि का उपयोग स्वलाभ की दृष्टि से करते हैं। जीवन में वे प्रायः असफल नहीं होते।

रज एवं तम—यदि द्वितीय नासिका क्षेत्र व तृतीय मुख क्षेत्र ही विकसित, उन्नत, विस्तृत एवं प्रक्षेपी हों तो जातक में रज एवं तम क्षेत्र निम्न होता है। इस प्रकार की मुखाकृति में मुख क्षेत्र, नासिका क्षेत्र से जितना अधिक उन्नत होगा, मनुष्य उतना ही कामी, वासनायुक्त, हिंसक, असभ्य, व मन्दबुद्धि होगा। इसके विपरीत नासिका क्षेत्र, मुख क्षेत्र से तुलनात्मक रूप से जितना अधिक प्रक्षेपी होगा, जातक उतना ही द्रुतगामी, उत्तेजित, आक्रामक, स्वनियन्त्रणहीन किन्तु स्पष्टवक्ता, मनमौजी, संरक्षक व न्यायप्रिय होगा।

प्रायः उच्च विश्व प्रधान लोग यदि वर्गाकार चेहरे से युक्त हों तो भौतिक सुख प्राप्ति में अधिक सफल होते हैं। यदि वे वृत्ताकाराकृति वाले हों तो जीवन में व्यावहारिकता का गुण उनमें आ जाता है। यदि सूच्याकार चेहरे के हों तो वे कामवासना पर अपेक्षाकृत अधिक कन्ट्रोल कर सकते हैं। यदि अण्डाकाराकृति के हों तो उसमें धैर्य, सौम्यता व गाम्भीर्य की प्रवृत्ति विशेषतः विकसित हो जाती है, लेकिन यदि अधोमुख कुम्भाकृति हो तो जातक की सतोगुणी प्रवृत्तियों में अधिक विकास हो जाता है।

इसी प्रकार विभिन्न आकृतियों में उनके गुण-धर्मों के अनुसार मध्य एवं निम्न विश्व की स्थितियों को देखकर ही उचित फल निर्देश करना चाहिए। इसके साथ ही यह समझ लेना भी आवश्यक है कि दो विश्व की प्रधानता होने के बाद भी तीसरे की स्थिति को ध्यान में रखना चाहिए तथा दोनों विकसित विश्वों में भी यह देखना आवश्यक होता है कि तुलनात्मक रूप से कौन-सा अधिक विकसित, उन्नत एवं प्रक्षेपी है। उसी के अनु-

सार प्रथम अति उन्नत विश्व के गुणों को लेना चाहिए, फिर क्रमशः उससे न्यून क्षेत्रों के गुणावगुणों को लेकर संयोगानुसार ही किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिए।

स्त्री विशेष फल—स्त्रियों को भी उपरोक्तानुसार ही फल प्राप्त होते हैं।

सत्व (स्थिर बुद्धि)

उपरोक्त तत्त्व मानव शरीर के सभी तत्त्वों में सर्वोपरि होता है। यह एक पूर्णरूपेण दार्शनिक तथ्य है, जो प्रायः जन सामान्य में दृष्टिगोचर होना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। लाखों-करोड़ों व्यक्तियों में एक-दो ही इस गुण से युक्त हो सकते हैं। इस तत्त्व को स्पष्ट करते हुए समुद्रेण कहते हैं—"इस तत्त्व से युक्त व्यक्ति दुःख एवं सुख में शोक व प्रसन्नता से परे रहकर धैर्य, समदृष्टि व स्थिर रहते हैं।"

इसी तत्त्व का विश्लेषण करते हुए श्रीकृष्ण ने गीता के अध्याय १४ श्लोक २४-२५ में कहा है कि "जो निरन्तर आत्म-भाव में स्थित होता हुआ दुःख-सुख को सम समझने वाला तथा मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाव वाला और धैर्यवान है तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है तथा अपनी निन्दा-स्तुति में भी जो समान भाव वाला है तथा जो मान और अपमान में सम है एवं मित्र और शत्रु के पक्ष भी सम है, वह सम्पूर्ण आरम्भों में कर्त्तापन के अभिमान से रहित पुरुष गुणातीत, स्थितप्रज्ञ, स्थिर बुद्धि या समत्व से युक्त कहा जाता है।"

इस प्रकार सत्व सम्पन्न व्यक्ति क्रमशः सत, रज एवं तम आदि गुणों से परे होते हैं। अस्तु, इस तत्त्व वाले जातकों के चाहे जो भी शरीर तत्त्व

एवं अंग लक्षण हों, उनको प्रधानता न देकर एकमात्र सत्व गुणों को ही देखना चाहिए। सामान्यतया ऐसे जातक अधोमुख, कुम्भाकृति, स्निग्ध, तेजस्वी, गम्भीर, सौम्य एवं मौन प्रवृत्ति के हो सकते हैं। वे अति उदार, दयालु, सहिष्णु, एकान्तसेवी, अध्ययन, मनन एवं चिन्तनशील, समाधिष्ट, शान्त, अलौकिक एवं महानतम होते हैं। इसलिए आचार्यों का कथन है कि इस तत्त्व को सर्वश्रेष्ठ मानना चाहिए क्योंकि यह परा-अपरा से दूर एक परम आत्म तत्त्व है। देखिए समुद्रेण का वाक्य है—

"वर्णः शुभो गतेः स्याद्वर्णादपि शुभतरः पुंसाम।
अति शुभ तमं स्वरादपि सत्वं सत्वाधिका धन्याः॥"

अर्थात्—मानव गति से वर्ण, वर्ण से स्वर एवं स्वर से भी सत्व क्रमशः उत्तम है।

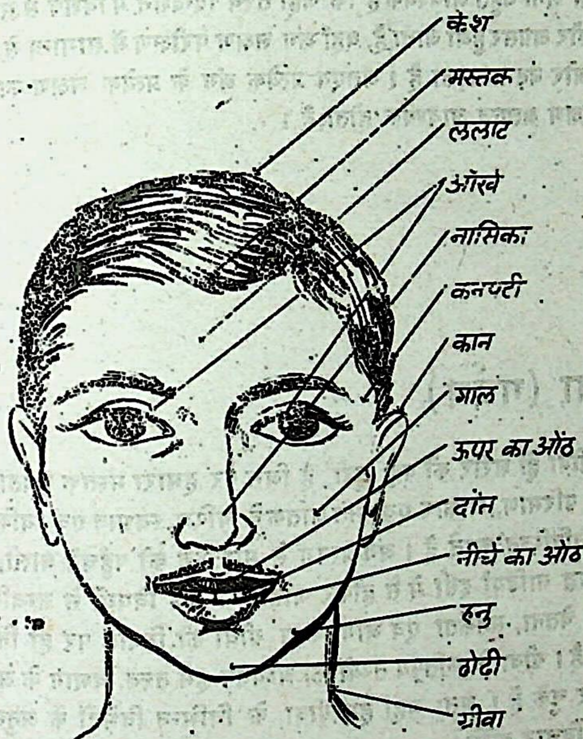
इसी को अधिक स्पष्ट करते हुए वह पुनः कहते हैं—'सकलगुणाधिकं सत्वम्' यानी सत्व सर्वाधिक उत्तम है। अतः यह निश्चय मान लेना चाहिए कि इस तत्त्व से उत्तम अन्य कोई गुण नहीं एवं विश्व के समस्त उत्तमोत्तम गुण इसी एक तत्त्व में निहित हैं।

स्त्री विशेष फल—उपरोक्त तत्त्व से युक्त नारी ही शक्तियुक्त (दुर्गा-स्वरूपा) दया, ममता, कल्याण एवं सत्य से परिपूर्ण होकर विश्व का हित, धैर्य एवं स्थिरता से करती है तथा जगन्माता, जगदम्बा, जगद्जननी एवं जगदीश्वरी कहलाती है।

मुखाकृति के अंग

"मुखाकृति के अंगों की भाषा इतनी स्पष्ट होती है जितनी कि पुस्तकों की, किन्तु वह प्रायः इतनी शीघ्रता से पढ़ी जाती है कि हम धोखा खा जाते हैं।"—अज्ञात

उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि तत्त्व जहाँ स्थूल रूप से मानव स्वभाव एवं उसके चरित्र की झाँकी एक दृष्टि में प्रस्तुत करते हैं, वहाँ अंग उसका विश्लेषण विस्तार से करते हैं। प्रत्येक अंग की मौन भाषा को केन्द्रित मन एवं स्थिर बुद्धि से पढ़ना आवश्यक होता है, क्योंकि यदि हम किसी अंग के सूक्ष्म संकेतों को छोड़ गए तो सत्य से दूर भी निकल सकते



मुखाकृति के अंग

चित्र क्रमांक-१२

हैं। अस्तु, मुखाकृति के तत्त्वों को ध्यान में रख, उसकी पृष्ठभूमि में प्रत्येक अंग के लक्षण को परखना उत्तम होता है। प्रमुख रूप से मुखाकृति-विज्ञान के अन्तर्गत क्रमशः ग्रीवा, ठोड़ी, हनु, ओष्ठ, दांत, जिह्वा, गाल, दाढ़ी-मूंछ, कान, कनपटी, नासिका, नेत्र, भौंहें, ललाट, मस्तक एवं केश आदि अवयवों की स्थिति एवं लक्षणों का अध्ययन होता है। चित्र-१२।

इससे पूर्व कि हम मुखाकृति के अंग-लक्षणों के क्षेत्र में प्रवेश करें यह समझ लेना बहुत आवश्यक है कि जहाँ तत्त्व दिग्दर्शन में विशेष से सामान्य की ओर अग्रसर हुआ जाता है, वहाँ अंग लक्षण परीक्षण में सामान्य से विशेष की ओर बढ़ना पड़ता है। अतएव प्रत्येक अंग के प्रत्येक लक्षण का सूक्ष्म निरीक्षण अत्यन्त आवश्यक होता है।

ग्रीवा (गर्दन)

ग्रीवा ही शरीर की वह 'धुरी' है जिस पर हमारा मस्तक घूमता है। इसका परिमाण, आकार एवं गति जातक के चरित्र, स्वभाव एवं व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करते हैं। अंग-प्रत्यंग से मस्तिष्क को पहुँचने वाली, धड़ से सम्बद्ध नाड़ियाँ इसी में से होकर जाती हैं। कई विषयों से सम्बन्धित मानव चेतना, सतर्कता एवं जागरूकता ग्रीवा की स्थिति पर ही निर्भर करती है। ग्रीवा के कतिपय तथ्यों का अध्ययन हम तत्त्व विभाग के अन्तर्गत कर चुके हैं। अतः यहाँ हम ग्रीवा के विभिन्न विभेदों के अनुसार उसका विचार करेंगे—

सीधी ग्रीवा—इस प्रकार के गर्दन वालें जातक में स्वाभिमान, विश्वास, समय की पाबन्दी, एक वचनीयता एवं सिद्धान्तप्रियता आदि सद्गुण अधिक होते हैं।

दीर्घ ग्रीवा—सामान्य से लम्बी गर्दन वाले व्यक्ति विचरणप्रिय, मन्दबुद्धि, बातूनी, पश्चात्ताप करने वाले, अस्थिर, चंचल एवं स्वप्रशंसक होते हैं।

ह्रस्व ग्रीवा—सामान्य से छोटी गर्दन के जातक अहंकारी, दम्भी, छली, अविश्वस्त, कृपण, स्वार्थी, लम्पट, परिश्रमी एवं मन्थरतायुक्त चरित्र के प्रतीक होते हैं।

अति पुष्ट ग्रीवा—इस प्रकार की गर्दन वाले जातकों में पैशाचिक क्षुधा तथा पिपासा, मादक द्रव्यप्रियता, अहंकारिता, मदान्धता एवं भ्रष्ट-चरि होना सम्भव है।

अति शुष्क ग्रीवा—जिस जातक की गर्दन दुर्बल, नसों से युक्त, मांस-हीन, पतली, क्षीण, अस्निग्ध एवं गड्ढों से युक्त हो, वह अकर्मण्य, निराश, क्रोधी, आलसी, विवेकहीन, अमहत्वाकांक्षी एवं प्रायः असफल होता है।

महिष ग्रीवा—चारों ओर से मोटी किन्तु आगे की ओर से धारीदार गर्दन मनुष्य में दुस्साहस, युद्धप्रियता, अहंकार, उन्माद, आक्रामकता, क्रोध, हिंसा एवं असभ्यता आदि प्रवृत्तियों की सूचक होती है।

उष्ट्र ग्रीवा—लम्बी, किन्तु आगे की ओर वक्र, ऊँट की तरह गर्दन की रचना जातक में अदूरदर्शिता, असहनशीलता, परिश्रमप्रियता, मूर्खता, धूर्तता, गति एवं तीव्रता की परिचायक होती है।

वक्र ग्रीवा—पीछे की ओर टेढ़ी गर्दन जहाँ अहं, कूटनीति, धूर्तता, छल एवं स्वार्थ का संकेत देती है वहाँ दायें-बायें टेढ़ी गर्दन छल एवं स्वार्थ के साथ खुशामद, निर्लज्जता, मूढ़ता, दिखावा, खोखलापन एवं निम्न प्रवृत्तियों को स्पष्ट करती है।

पारदर्शी ग्रीवा—इस प्रकार की गर्दन से यह तात्पर्य कदापि नहीं कि उसमें आर-पार दिखाई पड़ता हो, किन्तु प्रायः इसमें कुछ भी ग्रहण करते समय कुछ इस प्रकार को हलचल-सी दिखाई पड़ती है मानो उसके समस्त अवयव क्रियाशील हों। सामान्यतया ऐसी गर्दन मानव शरीर, मन एवं मस्तिष्क की सुकुमार, मृदु, कोमल एवं चंचल प्रवृत्तियों को इंगित करती है।

सुराही ग्रीवा—प्रायः इस प्रकार की गर्दन का चित्रण शृंगार साहित्य

में अधिक दृष्टिगोचर होता है। ऐसी गर्दन पतली, स्निग्ध, कोमल एवं मध्य भाग में नतोदर होती है, जो ऐश्वर्य, वैभव, काम एवं भोग की परिचायक होती है।

कम्बु ग्रीवा—इस प्रकार की गर्दन सरल, वर्तुल, स्निग्ध, पुष्ट, त्रिवलययुक्त, सामान्य लम्बाई एवं परिधि से पूर्ण होती है। इसका आकार स्निग्ध, वर्ण सरल एवं पुष्टता शंख के समतुल्य दिखलाई पड़ती है। ऐसे जातक स्वाभिमानी, दयालु, कर्मठ, क्रियात्मक, गम्भीर, विद्वान, साहसी, यशोभिलाषी, रजोगुणी एवं समृद्ध होते हैं। समुद्रेण तो कहते हैं—"कम्बुग्रीवस्तु भवेदे कातपत्रधारणो नृपतिः" अर्थात् ऐसे व्यक्ति नृप तुल्य स्वार्गादिक आनन्द को प्राप्त करते हैं।

चिबुक (ठोड़ी)

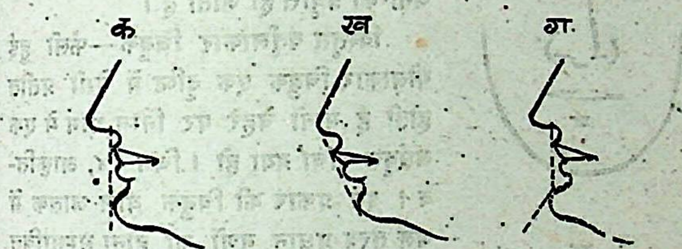
मानव मुखाकृति के निचले जबड़े का निम्न अग्रभाग संस्कृत साहित्य में चिबुक, हिन्दी में ठोड़ी या ठुड्डी एवं अंग्रेजी में Chin कहलाता है। यही वह स्थान है जहाँ से अनूक का आरम्भ होता है। नेत्रों की तरह मानव-स्वभाव एव चरित्र के विश्लेषण में चिबुक का भी महत्त्वपूर्ण योग रहता है।

इस स्थिति के परीक्षण हेतु सबसे पहले चेहरे को बाजू से देखना चाहिए। इस प्रकार देखने से ठोड़ी की निम्न तीन प्रमुख स्थितियों में से कोई एक स्थिति आपको स्पष्टरूपेण देखने को मिलेगी।

प्रथम स्थिति—यदि चिबुक का अग्रभाग ओष्ठ की स्थिति के सम हो तो उसे सम चिबुक के नाम से सम्बोधित किया जाता है। चित्र-२ आकृति क। उपरोक्त ठोड़ी जातक के स्पष्टवक्ता, निस्वार्थी, सत्यनिष्ठा

गम्भीर एवं विश्वस्त व्यक्तित्व की प्रतीक होती है। ऐसे जातक प्रायः सन्तुलित एवं प्रभावोत्पादक स्वर वाले होते हैं।

द्वितीय स्थिति—यदि जातक की ठुड्डी मुख से अन्दर की ओर दबी हुई हो तो उसे अधोगत चिबुक की संज्ञा प्रदान की जाती है। चित्र-१३, आकृति ख। इस प्रकार की ठोड़ी से युक्त व्यक्तियों में अविकसित बुद्धि, चंचलता, उच्छृंखलता, निराशा, भावुकता, उत्तेजना एवं मानसिक दुर्बलता के चिह्न होते हैं। वे प्रायः वाचाल, अनुशासनहीन, अकर्मण्य, गतिशून्य व विवेकहीन कार्यों को करते हैं।



चित्र क्रमांक-१३

तृतीय स्थिति—यदि ठोड़ी का अग्रभाग मुख से आगे निकला हुआ प्रतीत हो तो उसे अग्रगत चिबुक के नाम से पुकारते हैं। चित्र-१३ आकृति ग। इस प्रकार की ठुड्डी वाले जातक में कर्मठता, क्रियात्मकता एवं गतिशीलता तो होती है किन्तु प्रायः ऐसे लोग स्वार्थी, अर्थप्रिय, धूर्त, छली, कपटी, अविश्वस्त एवं कभी-कभी दुस्साहसी भी हो सकते हैं। वे अक्सर प्रत्येक बात में उतना ही भाग लेते हैं जितने से उनके स्वार्थ की पूर्ति हो।

इस प्रकार चिबुक का आजू-बाजू से अध्ययन कर लेने के पश्चात् उसको सामने से परखना चाहिए। सामने से देखते समय चिबुक की ऊपर से नीचे की ओर उतरती हुई स्थिति तथा उसकी केन्द्रीय स्थिति को ध्यान में रखना चाहिए। इस दृष्टि से चिबुक के प्रमुखतया निम्न विभेद होते हैं—

विस्तृत वर्गाकार चिबुक—इस प्रकार की ठोड़ी विस्तृत, सरल रेखा-









चित्र क्रमांक-१४

सी आधारित एवं आजू-बाजू से कोणात्मक दिखाई पड़ती है। चित्र-१४, आकृति—अ। चिबुक की ऐसी आकृति पृथ्वी तत्त्व प्रधान अनुक के गुणों से युक्त होती है। ऐसी ठोड़ी वाले जातक शक्तियुक्त, भौतिकताप्रिय, हृदयहीन, दीर्घसूत्री, विलासी, भोगी एवं आलसी होते हैं। कभी-कभी यदि ठुड्डी कठोर, मांसल एवं ताम्रवर्ण हो तो व्यक्ति में असभ्यता एवं उत्तेजना की प्रवृत्ति हो जाती है।

विस्तृत वर्तुलाकार चिबुक—फैली हुई गोलाकार चिबुक एक दृष्टि में ऐसी प्रतीत होती है मानो चेहरे पर निम्न भाग में एक अर्धवृत्त खींचा गया हो। चित्र-१४, आकृति-ब। इस प्रकार की चिबुक वाले जातक में जल तत्त्व प्रधान गुणों का होना सम्भावित होता है। ऐसे जातक एकान्तप्रिय, चंचल, भावुक, कामी, दिवास्वप्न देखने वाले, निराश एवं असफल होते हैं। यदि इनके चेहरे पर रक्तिम कान्ति, स्निग्धता एवं मृदुता हो तो उपरोक्त दुर्गुणों में न्यूनता आ जाती है एवं यदि कान्तिहीन, शुष्क, शिकनपूर्ण एवं काला वर्ण हो तो ऐसी स्थिति में चिड़चिड़ाहट, आवेश एवं विवेकशून्यता के लक्षण जागृत हो जाते हैं।

सूच्याकार चिबुक—यदि ठोड़ी विस्तृत न होकर लघु हो और साथ ही वर्गाकार-सी भी प्रतीत हो तो उसे सूच्याकार के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ऐसी ठोड़ी से युक्त चेहरे में नीचे प्रायः सँकरा वर्ग व ऊपर चौड़ा वर्ग बनता है। चित्र-१४, आकृति-स। ऐसी ठुड्डी

जातक में चपलता, तीव्र क्रोध, असहनशीलता, उत्तेजना, कर्मठता, साहस, सद्व्यवहार, स्पष्टता एवं जल्दबाजी की परिचायक होती है। ऐसे जातक समय-असमय, बात-बेबात भड़क उठने की आदत से लाचार होते हैं। साथ ही वे सत्य पसन्द, स्पष्ट हृदय, न्यायप्रिय एवं हठी स्वभाव के भी होते हैं। यदि ठोड़ी वर्गाकार एवं गाल गोलाई लिए हुए हों तो जातक में क्रोध और शान्ति, स्थिरता और अस्थिरता एवं साहस और भीरुता का एक अद्भुत ही सम्मिश्रण होता है। वे कब भावना में बहकर कौन-सा रूप धारण करेंगे यह निश्चित नहीं होता। एक क्षण में क्रोध से लाल-पीला हो उठना और दूसरे ही क्षण शान्त होकर विनम्र हो जाना इनकी अपनी विशेषता होती है।

अण्डाकार चिबुक—ऐसी ठोड़ी नीचे से पतली एवं ऊपर से तुलनात्मक रूप से कुछ चौड़ी होती है, किन्तु इसमें कहीं वर्ग या कोण न होकर एक ढलवाँ गोलाई होती है, जो अण्डे के पतले भाग-सी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। चित्र-१४, आकृति-द। ठोड़ी की ऐसी आकृति जातक में चंचलता, नटखटपन, खिलाड़ी भावना, कला-प्रेम, क्रीड़ा-कौशल, भावुकता एवं कई बातों के जानने की क्षमता प्रकट करती है। यदि ऐसे जातक के गालों की गोलाई अपेक्षाकृत कुछ अधिक हो तो व्यक्ति में व्यावहारिकता के साथ विचारशीलता की भी उसी अनुपात में वृद्धि हो जाती है।

दीर्घ चिबुक—ठोड़ी और मुख के मध्य यदि अधिक लम्बाई हो तो उसे दीर्घ चिबुक के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ऐसी ठुड्डी स्थिर, दृढ़, हठी, क्रोधी एवं उत्तेजित स्वभाव एवं चरित्र की परिचायक होती है।

ह्रस्व चिबुक—यदि मुख और ठुड्डी के बीच की दूरी अपेक्षाकृत कम हो तो जातक में आलस्य, अकर्मण्यता, जड़ता, सन्तोष, शान्ति एवं महत्वाकांक्षा की न्यूनता आदि होती है।

हनु

चिबुक के ऊपर आजू-बाजू का भाग हनु कहलाता है। यह ठोड़ी का ही भाग होता है, अतः इसे चिबुक से पूर्णरूपेण अलग नहीं किया जा सकता। इसकी स्थिति से ही ठोड़ी की स्थिति स्पष्ट होती है। अतएव इसके अन्त-

गंत इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हनु का दीर्घ, मांसल, स्निग्ध एवं नीचे की ओर ढलवाँ होना एक उत्तम प्रकार की ठोड़ी के लिए आवश्यक होता है। यदि ठोड़ी अच्छी हो तथा हनु प्रदेश अधोगत, निम्न, शुष्क तथा अमांसल हो तो वह एक अच्छी ठोड़ी के गुणों में भी न्यूनता ला देता है। समुद्रेण का कथन है—"व्यक्ति के दोनों जबड़ों के मध्य का स्थान यदि भरा हुआ, ढलवाँ, स्निग्ध तथा मांसल हो तो शुभ होता है। इसके विपरीत यह प्रदेश अशुभ कहलाता है।"

मुख (होंठ, दाँत एवं जीभ)

मुख का निर्माण प्रमुख रूप से होंठ, दाँत, जीभ एवं तालु आदि अवयवों के समूह से हुआ है। यदि उपरोक्त अवयवों को अलग कर दिया जाय तो मुख संज्ञा का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। इन सभी अवयवों के मुख्यत: दो कार्य होते हैं। पहला खाद्य तथा पेय सामग्री को व्यवस्थित रूप से पेट में पहुँचाना तथा दूसरा मानव की उच्चारण-क्षमता को सन्तुलन प्रदान करना। इनमें से पहला कार्य मानव-जीवन के अस्तित्व हेतु तथा दूसरा उसकी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार जीवनी शक्ति तथा व्यक्तित्व के निर्माण में मुख महत्त्वपूर्ण योग प्रदान करता है। यहाँ हम मुख के कतिपय प्रमुख अंगों का उनके लक्षणानुसार विवेचन करेंगे।

होंठ

वाह्य रूप से मुख संज्ञा का प्रधान स्वरूप होंठों से प्रारम्भ होता है। चेहरे का आकर्षण, प्रभाव और सौन्दर्य बहुत कुछ होंठों पर निर्भर करता

है। आकार, स्थिति तथा वर्ण के अनुसार इनसे निम्न संकेत प्राप्त होते हैं।

अति संकुचित होंठ—अत्यधिक छोटे, पतले तथा दुबले होंठ शरीर-क्षीणता, वाक्शक्तिहीनता, अन्न-पाचन दौर्बल्यता, निराशा, अक्षमता, हीन-भावना तथा दिखावे की प्रवृत्ति के सूचक होते हैं।

अति विस्तृत होंठ—सामान्य से अत्यधिक लम्बे, चौड़े, रक्तिम तथा पुष्ट होंठों वाले प्रायः बहुभोजी, वाचाल, उत्तेजक, क्रोधी, मूर्ख, तामसी तथा पाशविक यौन-पिपासा से युक्त होते हैं।

स्थूल होंठ—अधिक मांसल, थुलथुल, बेढब, भद्दे, श्याम तथा कठोर होंठ मुखमण्डल की कुरूपता, अविकसित बुद्धि, वासनात्मकता, क्रोध, असभ्यता तथा नीच प्रवृत्ति के द्योतक होते हैं।

यदि दोनों होंठों में से केवल ऊपर का होंठ अधिक स्थूल हो तो जातक में हठ, दम्भ, छल तथा मानसिक-व्यभिचार की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इसके विपरीत यदि तुलनात्मक रूप से नीचे का होंठ अधिक स्थूल हो तो जातक में भावुकता, आवेश, उत्तेजना, मानसिक असन्तुलन व आक्रामक अथवा अपराधी मनोवृत्ति हो सकती है, लेकिन यदि दोनों होंठ स्थूल हों तो उनका वर्ण रक्तिम, स्निग्ध व मृदुता से युक्त हो तो व्यक्ति में रसिकता, साधारण बुद्धि व भीरुता आदि के भाव उभरते हैं। दोनों स्थूल होंठ तमोगुण, पाशविक वृत्ति, असभ्यता तथा उद्दण्डता के द्योतक होते हैं।

दीर्घ होंठ—इस प्रकार के होंठों में लम्बाई तो पर्याप्त होती है किन्तु उनमें स्थूलता न्यून होती है। ऐसे जातक बातूनी, विचारवान, अकर्मण्य, काल्पनिक, बहुभोजी व भाग्यवादी होते हैं। ऊपर का होंठ अधिक लम्बा किन्तु नीचे का अपेक्षाकृत छोटा हो तो जातक में विश्वास, कलाप्रियता, शृंगार, स्नेह, दिखावटीपन, अहं तथा नाटकीयता होती है, किन्तु यदि नीचे का होंठ लम्बा और ऊपर का तुलनात्मक रूप से छोटा हो तो जातक में व्यावहारिकता, तीव्रता, भौतिकता से प्रेम और गतिशीलता होती है।

वक्र होंठ—यदि प्रकृति प्रदत्त सरलाकृति की अपेक्षा व्यक्ति के होंठों में एक अस्वाभाविक वक्रता हो तो ऐसे जातक में कुटिलता, छद्मता, छल, तीव्रता, अविश्वस्तता व गहन रहस्यात्मकता आदि अवगुण होते हैं। ऐसे जातक यदि अन्य लक्षणों के अनुसार अपराधी वर्ग में हों तो समाज के लिए

घातक होते हैं, किन्तु अन्य लक्षण अच्छे हों तो वे जासूसी आदि कार्यों से समाज या देश की सहायता भी कर सकते हैं।

शुष्क होंठ—किसी भी आकार-प्रकार के सूखे होंठ शुभ नहीं होते। अच्छे प्रकार के होंठ यदि शुभ न हों तो उनके गुणों को न्यून करते हैं तथा बुरे वर्ग में अवगुणों में वृद्धिकारक होते हैं।

वर्णयुक्त होंठ—श्वेत वर्ण के होंठ भावुकता, निराशा, अस्वस्थता, अकर्मण्यता के प्रतीक, काले रंग के पैशाचिकता, नीचता, कठोरता, हृदयहीनता व असभ्यता के द्योतक, लालवर्ण के कर्मठता, उत्तेजकता, साहस तथा हठ के परिचायक व गुलाबी रंग के व्यावहारिकता, उदारता, स्नेह और विकसित बुद्धि के सूचक होते हैं।

उत्तिथ होंठ—जिन व्यक्तियों के होंठ मिलते समय जंगली सूअर के समान उठते हों वे मन्दबुद्धि, भीरु, नीचसंगत, हीन प्रवृत्ति तथा अभक्ष्यभक्षी होते हैं।

धँसित होंठ—कुछ व्यक्तियों के होंठ मुँह के अन्दर ही की ओर धंसते-से प्रतीत होते हैं। ऐसे जातक में अस्पष्टता, भेद-भाव, संकुचितता, गोपनीयता तथा रहस्यात्मकता के कारण गुणावगुण होते हैं।

उत्तम होंठ—सरल, सम, रक्तिम, स्निग्ध, सन्तुलित, सुन्दर एवं आकर्षक तथा मृदु होंठ उत्तम माने जाते हैं। प्रायः सभी गुण तो एक साथ नहीं दिखलाई पड़ते, किन्तु यदि इनमें से अधिकांश दृष्टिगोचर होते हैं तो जातक में विशाल दृष्टिकोण, वाणीसंतुलन, उदारहृदयता, विकसित बुद्धि, मननप्रियता, गम्भीर स्वभाव व व्यवहार प्रधानता के गुण उसी अनुपात में न्यूनाधिक होना सम्भव है।

दशन (दाँत)

भोजन को चबाने के अतिरिक्त दाँतों के अन्य प्रमुख कार्य ध्वनि उच्चारण एवं मुख सौन्दर्य की वृद्धि करना भी है। सामान्यतया यह मुख के ऊपर और नीचे के जबड़ों की अस्थि पर अपने दृढ़ रेशों से जकड़े हुए रहते हैं। चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से इनके क्रमशः प्रमुख तीन भाग माने जाते हैं—(१) मुकुट—यह भाग मसूढ़ों के ऊपर, बाहर को चमकता हुआ रहता

है जिसे हम आसानी से देख सकते हैं, (२) ग्रीवा—यह मुकुट और जबड़ों का सन्धि-स्थान होता है, जो प्राय: मसूढ़ों को बिना चौड़ा किए दिखाई नहीं पड़ता एवं (३) मूल—यह मसूढ़ों में गड़ा हुआ भाग होता है जो जबड़े की अस्थि पर टिका रहता है। इसे हम दाँत के उखाड़े बिना नहीं देख सकते। सामुद्रिक शास्त्र में दाँत के प्रथम भाग मुकुट की स्थिति एवं आकार तथा उसके ऊपर चढ़ी हुई ऐनेमल की परत की शुभ्रता, स्वच्छता, वर्ण, स्निग्धता एवं चमक आदि के अनुसार शुभाशुभ का विचार किया जाता है। उपरोक्तानुसार प्रमुख रूप से दशन लक्षण इस प्रकार माने जाते हैं।

दीर्घ दशन—बड़े दाँत, किन्तु होंठों के ऊपर आते हुए नहीं, जातक में प्रसन्नचित्तता, सन्तुलित वाक्शक्ति, आशावादी स्वभाव, नेतृत्वप्रियता, स्वाभिमान एवं सामान्य स्वास्थ्य का परिचय देते हैं।

लघु दशन—तुलनात्मक रूप से चूहे के समान छोटे एवं ऊपर से तीक्ष्ण दाँत भीरुता, शौर्य कर्म, छल, कपट, भ्रष्टाचार, उच्छृंखलता, चंचलता, तीव्रता, विध्वंसात्मक विचारधारा एवं विश्वासघाती प्रवृत्ति के सूचक होते हैं।

ओष्ठ चर्वक दशन—इस प्रकार के दाँत दो प्रकार के होते हैं। प्रथम ऊपर के जबड़े के वह अति बड़े लम्बे दाँत जो नीचे के होंठों को दबाते हों, क्रोध, अस्थिरता, आवेश, द्वेष, घृणा, डाह एवं दम्भ की सूचना देते हैं एवं द्वितीय नीचे के जबड़े के वे बड़े अग्रदाँत जो ऊपर के होंठ को चबाते हों बाह्य रूप से ढोंगात्मक, उदारता, गम्भीरता, साहस एवं स्नेह, किन्तु आन्तरिक रूप से घृणा, कपट, छल, क्रोध एवं पैशाचिक प्रवृत्ति के द्योतक होते हैं।

विषम दशन—कुछ छोटे कुछ बड़े, कुछ आगे कुछ पीछे, इस प्रकार के अपंक्तिबद्ध दाँत अस्थिर मानसिकता, असन्तुलित वाणी, द्वंद्वात्मक विचार-प्रवाह, अव्यावहारिकता एवं अनिश्चित गतिविधियों के प्रतीक होते हैं। ऐसे जातक अविश्वस्त तो नहीं होते, किन्तु विरोधाभासी प्रवृत्ति के कारण उन पर पूर्ण भरोसा भी नहीं किया जा सकता।

सम दशन—न अधिक बड़े, न अधिक छोटे, स्ववर्णानुसार पंक्तिबद्ध व सीधे दाँत वाले जातक के स्वभाव एवं चरित्र में विकसित बुद्धि सम्पन्न

न्नता, विचारशीलता, व्यावहारिकता, वाणी सन्तुलन, धैर्य एवं शान्तिप्रियता एवं प्रभावोत्पादकता होती है।

दशन कान्ति—स्वच्छ, साफ, निर्मल एवं चमकीले दाँत मनुष्य के जीवन की नियमबद्धता, समय की पावन्दी, स्पष्टता एवं स्नेह को व्यक्त करते हैं। इसके विपरीत अस्वच्छ, मलिन, गन्दे एवं निस्तेज दाँत जातक की अस्त-व्यस्तता, अस्वस्थता, घृणा, आलस्य तथा हीनता के सूचक होते हैं।

दशन वर्ण—कतिपय व्यक्तियों के दाँत साफ करने के उपरान्त भी विवर्ण, पीले या काले रंग से युक्त होते हैं। ऐसे जातक में परम्परागत कोई उदर रोग विशेष, मादक द्रव्यप्रियता या मानसिक असन्तुलन होना सम्भव है।

यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि दाँतों की कान्ति व वर्ण दाँतों की स्थिति व आकार के गुणावगुणों में अपने गुण-धर्मानुसार न्यूनाधिक फल को स्पष्ट करते हैं। जैसे समदशन के गुणों में अशुभ कान्ति या वर्ण उनके दुर्गुणों में न्यूनता ला देते हैं।

दशन संख्या—प्रायः प्रत्येक मनुष्य के दाँतों की कुल संख्या एक समान नहीं होती अपितु न्यूनाधिक होती है। संख्या के अनुसार सामुद्रिकविदों ने उनके फल निर्देश इस प्रकार स्पष्ट किए हैं—पूर्ण बत्तीस दाँत सत्यवचनी, विद्वान, ज्ञानी, तेजस्वी व आध्यात्मप्रिय व्यक्तित्व के सूचक होते हैं। इकत्तीस दाँत वाले जातक समृद्ध, भोगी, विलासी व राजस गुण से युक्त होते हैं। तीस दाँत चंचल, अस्थिर, क्रोधी तथा उच्छृंखल स्वभाव के प्रतीक माने जाते हैं। उनतीस दाँत असत्यप्रेमी, धूर्त, कपटी व दम्भी चरित्र को व्यक्त करते हैं। अट्ठाइस दाँत वाले जातक मन्दबुद्धि, वाचाल, तीव्र तथा शैशव प्रवृत्ति से युक्त होते हैं।

जिह्वा (जीभ)

जिह्वा (जीभ) मांसपेशियों से बना हुआ, हमारे शरीर का यह सबसे अधिक संवेदनीय अवयव है, जिसे स्वादानुभूति की ज्ञानेन्द्रिय के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। चिकित्साविदों का अनुभूत कथन है कि

जीभ में रक्त का संचार अन्य बाह्य अवयवों की अपेक्षाकृत सबसे अधिक होता है। यही कारण है कि मस्तिष्क से ज्ञान तन्तुओं द्वारा व हृदय से रक्तवाहनियों द्वारा इसका सीधा सम्पर्क रहता है। मस्तिष्क की पांचवीं तथा नवीं सांवेदनिक व बारहवीं गति उत्पादक नाड़ियां इससे प्रमुख रूप से सम्बद्ध होती हैं। जीभ ऊपर की ओर सूक्ष्म स्वादकणों के कारण खुरदरी व नीचे की ओर मृदु मांसपेशियों के परिणामस्वरूप कोमल तथा स्निग्ध होती है।

यह मानव की मनस्थिति को वाणी के माध्यम से व्यक्त करती है। विभिन्न कुण्डलिनियों द्वारा प्रेरित विभिन्न स्वरों को व्यक्त करते समय प्राकृतिक रूप से कई प्रकार की गति होती है, जिससे स्वरों में अगाध शक्ति उत्पन्न होती है। स्वरों की शक्ति को दार्शनिक ही नहीं अपितु वैज्ञानिक भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसकी स्वर-शक्ति के सम्बन्ध में पूना स्थित आकल्ट रिसर्च कालेज के आचार्य श्री करमरकर महोदय ने बड़ौदा में प्रवचन करते समय प्रायोगिक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए 'रँ' अग्निवीज स्वर द्वारा अपने शरीर का तापमान बढ़ाकर दिखाया। इसी प्रकार आस्ट्रीयन वैज्ञानिक श्री वी० एम० लेसर-लेसारियों ने 'ला ला एवं यू यू पू पू' विभिन्न उच्चारणों द्वारा अपनें रक्ताभिसरण में स्फूर्ति उत्पन्न कर सन्धिवात रोग की चिकित्सा की। इस प्रकार से स्वर शक्ति के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि स्वर उदाहरण शक्ति में एक अद्भुत शक्ति है। भारतीय मन्त्र-शास्त्र का आधार भी यही शक्ति है।

यहाँ हम इसके अधिक विस्तार में न जाकर सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से जिह्वा का लक्षणानुसार त्रिवेचन करेंगे। प्रमुख रूप से जीभ के निम्नांकित विभेद होते हैं।

दीर्घ जीभ—लम्बी, पतली, मृदु एवं स्निग्ध जीभ उत्तम वाक्-शक्ति, षट्रस भोजनप्रियता, यशोभिलाषी, दूरदर्शी, महत्वाकांक्षी, विश्वस्त एव विश्लेपक प्रवृत्ति के जातक की होती है। यदि इस प्रकार की जिह्वा के साथ विशेषकर स्त्रियों के अन्य लक्षण यदि उत्तम प्रकार के न हों तो उनमें चटोरापन, चारित्रिक दोष एवं मुँहजोरी आदि दुर्गुण भी उत्पन्न हो

सकते हैं, जिनके परिणामस्वरूप उनके दाम्पत्य जीवन में गतिरोध होना सम्भव है।

ह्रस्व जीभ—छोटी, मोटी, कठोर एवं शुष्क जिह्वा जातक के स्वभाव एवं चरित्र में मन्दबुद्धि, हीन अभिव्यक्ति, कुतर्क, अकर्मण्यता, आवेश एवं अविश्वस्तता की परिचायक होती है। स्त्रियों में ऐसी जीभ प्रायः झगड़ालू प्रवृत्ति, शंकाशीलता, गुप्त व्यभिचार एवं असौभाग्य की प्रतीक होती है।

उत्तम जीभ—सामान्य लम्बी, पतली, स्निग्ध, मृदु, स्वच्छ, गुलाबी, रक्तिमवर्ण युक्त व सरल कोणिक जिह्वा ऐश्वर्य, सुख, शांति, विचार, व्यवहार, स्नेह, उदारता एवं दया की द्योतक होती है। ऐसे जातक चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, जीवन में प्रायः अधिक सफल होते हैं। यदि जीभ का रंग रक्तिम चकते-सा हो तो किसी रोग के आक्रमण की सूचना देता है। पीला रंग पाण्डु रोग का प्रतीक व काला रंग तमोगुण को व्यक्त करता है। अस्तु, आकार, स्थिति, गति, रस व वर्ण के अनुसार जिह्वा का परीक्षण करना चाहिये।

तालु

जीभ के साथ ही तालु पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। यह मुख के अन्दर ऊपर जबड़े का निम्न तल होता है जो पीछे गले की ओर मृदु व कोमल मांसपेशियों से युक्त व आगे की ओर कठोर अस्थिमय होता है। उसकी स्थिति एवं आकार-प्रकार का जिह्वा की गति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। तालु का फलनिर्देश इस प्रकार होता है—

तालु आकार—कमल की पंखुड़ियों के समान कोमल, पार्श्व में विस्तृत तथा आगे से वर्तुल व संकीर्ण तालु उत्तम होता है। इसका योग जिह्वा के साथ होना चाहिए ताकि जिह्वा को गतिशीलता प्रदान कर सके। ऐसे तालु वाले जातक उच्च उच्चारण क्षमता सम्पन्न, गम्भीर नादयुक्त, सन्तुलित वाणी प्रधान एवं प्रभावोत्पादक होते हैं। इसके विपरीत जिह्वा से अत्यधिक बड़ा वा छोटा तालु वाक्शक्तिहीनता, लज्जाशीलता, भीरु प्रवृत्ति, हीनभावना एवं वाणी-दोष का परिचायक होता है।

तालु वर्ण—रक्तिम तालु स्वास्थ्य, आशा, कर्म-प्रधान, महत्त्वाकांक्षा, विश्वास एवं सरलता, श्वेत वर्ण तालु उदासीनता, आलस्य, गतिहीनता, चारित्रिक दौर्बल्य एवं अस्वस्थता तथा काला तालु तमोगुणी प्रवृत्ति, हृदय-हीनता, नीचता, पाप, एवं दुःख आदि का सूचक होता है।

स्निग्ध तालु—मुख ग्रन्थियों के रस से परिपूर्ण, सरल, स्निग्ध एवं चिकना तालु मानव वाणी में ओज, आकर्षण एवं प्रभाव भरता है। इसके विपरीत शुष्क, नीरस एवं अस्निग्ध तालु व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति में गति-रोध, असन्तुलन, अगाम्भीर्य एवं हीनता का द्योतक होता है।

हँसी

मुख द्वारा हँसने की क्रिया भी सम्पन्न होती है। पाठकों ने स्वयं अनुभव किया होगा कि विभिन्न व्यक्ति हँसते समय विभिन्न प्रकार की ध्वनि निकालते हैं। साथ ही उस समय उसके मुख की कई प्रकार की चेष्टाएँ भी होती हैं। हँसने के लक्षणों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध आंग्ल विद्वान गेटे का कथन बरबस ही याद आ जाता है: "मनुष्य अपने चरित्र का प्रदर्शन और किसी क्रिया से उतना अच्छा नहीं करता जितना कि हँस कर करता है।

इस प्रकार किसी भी व्यक्ति की हँसी के लक्षणों एवं चेष्टाओं के आधार पर उसके मन एवं मस्तिष्क की प्रवृत्तियों को सरलता के साथ पहचाना जा सकता है। सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से हँसी के विभेद एवं उनका फल-निर्देश निम्न प्रकार होता है।

खिलखिलाकर सम्पूर्ण तन-मन से हँसना मानव के स्पष्ट हृदय, सरस प्रकृति, पुनीत भावना एवं उदार स्वभाव आदि गुणों की पुष्टि करता है। ऐसे जातक कपटविहीन, छलरहित एवं किसी भी भेद-भाव से विलग रहकर बड़ी प्रसन्ननता से खूब लम्बे समय तक आत्मविभोर होकर हँसते हैं।

अट्टहास के साथ उच्च स्वर में हँसना जातक के स्वाभिमान, कर्मठता, विश्वास, पुरुषार्थ एवं सफल व्यक्तित्व का परिचायक होता है, किन्तु यदि ऐसी हँसी के साथ मुखाकृति की अन्य चेष्टाएँ व्यंग्यपूर्ण हों तो वह हँसी दम्भ, अहं, उपेक्षा, घृणा एवं नीचता की प्रतीक होती है।

हिनहिनाकर अश्वध्वनि के तुल्य हँसना तथा उसके साथ ही नेत्रों की

पलकों को बन्द कर लेना धूर्तता, छल, कपट, भेद, एवं निकम्मेपन का द्योतक होता है। ऐसे जातक की ध्वनि में अद्‌भुत प्रकार की 'ड' मिश्रित हिनहिनाहट होती है।

रुक-रुक कर हँसना या एक ही विषय पर कुछ अन्तर से हँसना या विषय के पूर्व अथवा बाद में प्रतिकूल समय पर हँसना, जातक की निर्बल मानसिक शक्ति, बुद्धिहीनता, अविवेकी प्रवृत्ति, दुष्टता तथा मूर्खता को अभिव्यक्त करता है। ऐसे जातक को चर्चा का विषय या तो समझ में नहीं आता या उसे वह बात बाद में समझ आती है अथवा सम्भवतः बिल्कुल बाद में, वह अपनी मूर्खता पर हँसता है। इसलिए कहते हैं कि मूर्ख एक बात पर रुक-रुक कर तीन बार हँसता है। प्रथम तो बिना समझे-बूझे दूसरों के साथ, द्वितीय बात के तात्पर्य को समझने पर और अन्त में अपनी मूर्खता पर। जो व्यक्ति एक स्निग्ध, मृदु, मुस्कान के साथ हँस कर अपने हृदय की प्रसन्नता को अभिव्यक्त करता है वह गम्भीर, धैर्य, शान्ति, विश्वास, ज्ञान एवं स्थिर प्रकृति से युक्त होता है। ऐसे जातक प्रायः बहुत ही कम हँसते हैं एवं यदि हंसते हैं तो उनके मुख से कोई स्वर या ध्वनि नहीं निकलती अपितु केवल होंठों पर सरल मुस्कान की रेखाभर खिच जाती है।

सम्पूर्ण शरीर, ग्रीवा, कन्धे आदि को स्पन्दित कर किसी भी स्वर में हँसने वाले जातक प्रायः स्नायु संस्थान की दुर्बलता, मानसिक व्यग्रता, सहनशीलता एवं अति आनन्द की चाह वाले होते हैं। ऐसे जातक विनोद में अपने तनाव को भूल जाना चाहते हैं किन्तु भूल फिर भी नहीं पाते।

स्त्री विशेष फल—हँसने के सम्बन्ध में नारी वर्ग हेतु सर्वश्रेष्ठ हँसी एक सरल मुस्कान होती है। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार का हँसना उनके लिए क्रम से निम्नस्तरीय होता है। इसलिए कहा जाता है कि नारी की उत्तम हँसी वह है जिसमें दाँत दिखाई न पड़ें।

इसी सन्दर्भ में मुख से दो बातें स्पष्ट होती हैं—प्रथम, जहाँ प्रायः बन्द होंठ सामान्यतः जातक में धैर्य, गम्भीरता, स्वनियन्त्रण, दृढ़ आत्मबल एवं प्रबल विश्वास के परिचायक होते हैं, वहाँ खुले मुँह वाले जातक स्पष्टता, चंचलता, आवेश, उत्तेजना, भावुकता एवं अगोपनीयता की प्रवृत्ति वाले होते हैं।

नासिका (नाक)

नासिका (नाक) श्वास-प्रश्वास क्रिया का प्रमुख माध्यम, गन्धानुभूति या घ्राणशक्ति की मुख्य इन्द्रिय तथा मानव-मुख सौन्दर्य के विभिन्न घटकों में से एक प्रधान घटक मुखाकृति है। सामुद्रिक विज्ञान के अन्तर्गत इसकी स्थिति एवं आकार-प्रकार आदि से जातक के चरित्र का परीक्षण दो तरह से किया जाता है। प्रथम, बाजू से नाक के कोण को देखकर एवं द्वितीय सामने से उसके विभिन्न सप्त अंगों की स्थिति के अनुसार। उपरोक्त दोनों ही दृष्टिकोणों पर हम यहाँ क्रम से विचार करेंगे।

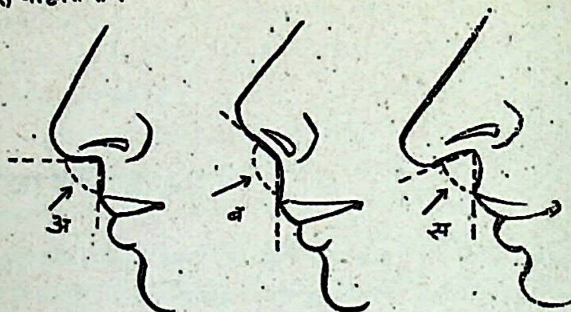
यदि आप किसी भी व्यक्ति के चेहरे को किसी भी एक बाजू से नासिका के निम्न भाग और ऊपरी होंठ के मध्य, ध्यान केन्द्रित करके देखें तो आपको प्रतीत होगा कि सामान्यतया निम्न तीन कोणों में से कोई एक कोण निर्मित होता है।

समकोण नासिका—इस प्रकार की नाक में नासिका के आधार एवं ऊपरी होंठ के मध्य का कोण समकोण होता है। ऐसे जातक सामान्यतया सच्चे, उदार, सौम्य, विश्वस्त, बुद्धिमान एवं महत्वाकांक्षी होते हैं। चित्र १५, आकृति-अ।

बृहतकोण नासिका—ऐसी नाक का कोण समकोण से अधिक होता है। यह कोण अधिक से अधिक १३५ अंश तक विस्तृत देखने को मिल सकता है। ऐसी नासिका वाले जातक अस्थिर, अविवेकी, अदूरदर्शी, लापरवाह, असावधान, धृष्ट, निर्लज्ज एवं अशिष्ट स्वभाव के होते हैं। चित्र-१५ आकृति-ब।

न्यूनकोण नासिका—ऐसी नासिका ९० अंश से कम का कोण बनाती है। यह कोण जितना कम होता है उसी के अनुसार जातक में निराशा,

ईर्ष्या, द्वेष, डाह, अशान्ति एवं भावुकता आदि में वृद्धि करना है। चित्र-१५, आकृति-स।



चित्र क्रमांक—१५

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नासिका के कोणानुसार मानव-स्वभाव एवं चरित्र का स्थूल रूप क्या और कैसा होगा, लेकिन नाक के अन्य आकार-प्रकार से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं।

शरीर की रचना के अनुसार नासिका के निम्न सात भाग होते हैं—(१) सन्धि-स्थान, (२) पास-स्थान, (३) नलिका-स्थान, (४) नथुना-स्थान, (५) अणी-स्थान, (६) छिद्र-स्थान एवं (७) उत्ति-स्थान आदि। चित्र-१६, आकृतियाँ-अ, ब, स।

सन्धि-स्थान—यह स्थान दोनों नेत्रों के मध्य, ललाटस्थि के निम्न तल एवं भौंहों के मध्य होता है। यह व्यक्ति के ज्ञान, बुद्धि, अध्ययन, मनन एवं चिन्तन आदि की प्रवृत्तियों को अपनी स्थिति के अनुसार इस प्रकार स्पष्ट करता है—

निम्न-सन्धि—नासिका का यह स्थान ललाटस्थि से कुछ नीचे दबा हुआ हो तो जातक में विकसित बुद्धि, अध्ययनप्रियता, गम्भीरता, उदारता तथा विशालहृदयता के लक्षण होते हैं। ऐसे जातक सत्यनिष्ठ, न्यायप्रिय व विश्वस्त होते हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार यह स्थान मन को केन्द्रित करने का अद्वितीय माध्यम माना जाता है। प्राचीन ऋषि-महर्षि ध्यानावस्था में, नेत्रों को बन्द कर पुतलियों को इसी स्थान (भ्रू मध्य) पर केन्द्रित कर एकाग्रचित्त होते थे।

सम सन्धि—यदि ललाटस्थि से निम्न न होकर सपाट रूप से यह स्थान मिला हुआ हो तो उसे सम सन्धि स्थान कहते हैं। ऐसे जातक में चंचलता, अस्थिरता, उच्छृंखलता तथा उद्दण्डता की प्रवृत्ति होती है। ऐसे जातक प्रायः गम्भीर शास्त्र व बातों को पढ़ने-सुनने में रुचि नहीं रखते और जीवन में कभी भी गम्भीर नहीं होते। दर्शन की अपेक्षा उन्हें क्षुधा और यौन-साहित्य अधिक आकर्षित करते हैं।

उच्च सन्धि—नाक का यह स्थान यदि ललाट से ऊँचा उठा हुआ प्रतीत हो तो अपने उठाव के अनुपातानुसार जातक में पाखण्ड, दम्भ, अहंकार, दुस्साहस, क्रोध, आवेश, उत्तेजना, हिंसा, क्रूरता, छल, कपट, तथा तमोगुणी प्रवृत्तियों को अधिक उभारता है। ऐसे जातक भावनाओं में बहकर कब कौन-सा पाशविक कर्म कर बैठेंगे यह कोई नहीं कह सकता। ऐसे जातक प्रायः अपने आप में इतने असन्तुलित रहते हैं कि किसी भी बात पर विवेक से सोचने का अपने मस्तिष्क को अवसर ही नहीं दे पाते। अतः जातक की नासिका के इस स्थान की स्थिति को ध्यान से देखना चाहिए। चित्र-१६, आकृति-ब १।

पासा स्थान—नासिका के सन्धि-स्थान से नीचे (मध्य के भाग को छोड़कर) आजू-बाजू के स्थान को पासा-स्थान के नाम से संबोधित किया जाता है। चित्र-१६, आकृति-ब २।

यदि जातक के यह दोनों पासे प्रारम्भ से अन्त तक वृत्ताकार उभरे हों तो उसमें परिश्रम, कर्मठता, आशा, विश्वास, दृढ़ता, साहस, सम्मान तथा शक्ति आदि गुण होना सम्भावित है। यदि उक्त पासे अपने उद्गम स्थान से कुछ नीचे जाकर गोलाकार उठे हुए हों तो जातक में उदारता, दया, स्नेह, सहृदयता, निस्वार्थता, त्याग, भावुकता तथा चंचलता आदि के परिचायक होते हैं। आरम्भ से मध्य तक गोल उठे हुए पासों वाले व्यक्ति सौम्य, गम्भीर, सतर्क तथा चिन्तक होते हैं।

यदि पासा-स्थान आदि-अन्त को छोड़कर केवल एकमात्र मध्य में ही उठे दृष्टिगोचर होते हों तो जातक चंचल, उच्छृंखल, मतिहीन, लक्ष्यविहीन तथा क्रोधी होता है।

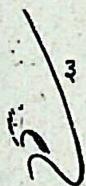
इसके विपरीत यदि पासे आरम्भ तथा अन्त में उभरे हुए तथा मध्य

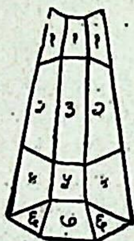




नासिका



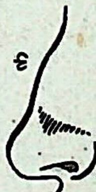


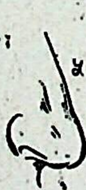


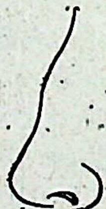


ब











चित्र क्रमांक—१६

में दबे हुए हों तो ऐसे जातक में लोभ, मोह, कृपणता, धूर्तता, छल, कपट, तथा अविश्वस्तता आदि दुर्गुण होते हैं। इस सम्बन्ध में तो कहावत है कि—

"जाको पासा कूल गत देखत जानो जाय।
कपटी लोभी अति जिए दो-तीन त्रिया खाय॥"

अर्थात् जिसके पासे उपरोक्त प्रकार से मध्य में बैठे हुए हों वह कपटी, लोभी, दीर्घजीवी तथा दो या तीन से अधिक विवाह करने वाला होता है।

इसके अतिरिक्त दृढ़ व गठीले पासे उत्तम बौद्धिक विकास तथा स्वस्थ मांसल पासे सचेतन मानसिक शक्ति तथा उदारता, शुष्क पासे निम्न मनोवृत्ति तथा तमोगुण प्रवृत्ति तथा विषम एवं वक्र पासे मूर्खता. असभ्यता तथा असफलता के परिचायक होतें हैं—

नलिका-स्थान—पासों के मध्य तथा सन्धि-स्थान के नीचे नासिका के अस्थि भाग वाले स्थान को नलिका के नाम से पुकारा जाता है। चित्र-७, आकृति-ब ३।

नलिका स्थान का सुन्दर, सन्तुलित तथा सामान्य उतार-चढ़ाव स्वाभिमान, विश्वास, यश, ऐश्वर्य, समृद्धि तथा सफलता का द्योतक होता है। सीधा तथा सरल नलिका-स्थान उदारता, स्नेह, सरलता, सीधापन तथा सामान्य जीवन पद्धति के गुणों को जातक के स्वभाव तथा चरित्र में उभारता है। ऊपर से अत्यधिक पतली तथा नीचे से अधिक चौड़ी नलिका वाले व्यक्ति में अहं, दम्भ, चिड़चिड़ापन, आवेश, उत्तेजना तथा विकसित मानसिक प्रवृत्ति के दुर्गुणों में से एक या अनेक तत्त्व देखने को मिल सकते हैं। नीचे से विस्तृत और मध्य भाग में अन्दर धँसी हुई नलिका संकुचित विचारधारा, कूपमण्डूकता, स्वार्थपरता, भ्रष्ट-चरित्रता तथा निम्न प्रवृत्तियों की प्रतीक होती है। ऐसी नलिका के सम्बन्ध में जन सामान्य तक कहते हैं कि "जाकी नरिका बीचे ढ़रे, वह परिवार के पीछे मरे।" इसी प्रकार मालवी में कहा जाता है—"जणि की नली बिच्चे चपटी, होवे उस जनम को कपटी।" अस्तु सारांश में यही माना जाता है कि इस प्रकार का नलिका स्थान शुभ नहीं होता।

नथुना स्थान—दोनों पासों के नीचे नाक के दोनों ओर, दो मांसल उभरे हुए अवयव होते हैं जिन्हें नथुने कहते हैं। चित्र-१७, आकृति-ब ४।

उत्तम, वर्तुल, मांसल, रक्तिम तथा कान्तिपूर्ण नथुने पुष्ट शरीर, आशा, महत्त्वाकांक्षा, विचारशीलता, वैभव एवं कर्मठता को व्यक्त करते हैं। थुलथुल, बेढ़व, भद्दे, श्याम, दानेदार तथा ढीले नथुनों से जातक में आलस्य, अकर्मण्यता, अव्यावहारिकता, अहं, पाखण्ड तथा दरिद्रता के दर्शन होते हैं। अति विस्तृत, वक्र, सपाट, ऊबड़-खाबड़ तथा स्पन्दित नथुना स्थान वासना, विलासिता, मतिहीनता, अस्थिरता तथा दुर्बल चरित्र को अभिव्यक्त करता है। कुछ विद्वानों का अनुभव है कि बड़े नथुने वाले जातक बाल्यकाल से ही घर से दूर रहकर अपना जीविकोपार्जन करते हैं "नाक-नाक के नकुआ बड़े—पढ़ि विदेश जीवन कढ़े" संकुचित, छोटे, पकोड़ी-जैसे नथुने स्वार्थ, दम्भ, घृणा, डाह, उपेक्षा, असहिष्णुता के प्रतीक होते हैं। यदि इनमें कठोरता, श्यामवर्ण तथा तेजहीनता भी हो तो ऐसे जातक में मादक द्रव्यप्रियता, स्नायविक दौर्बल्य, आचारहीनता तथा नीच कर्म प्रवृत्तियों का भी समावेश हो जाता है।

अणी स्थान—दोनों नथुनों के मध्य तथा नलिका स्थान के ठीक नीचे अणी होती है। इसको अंग्रेजी में Point of the Nose कहते हैं। चित्र-१६, आकृति-ब ४।

अणी के सम्बन्ध में पाश्चात्य सामुद्रिक लेवेटर कहता है कि—'Point of the nose neither sharp nor fleshy' अर्थात् अणी स्थान न तो एकदम नुकीला ही होना चाहिए और न ही एकदम फैला हुआ हो। अपने चारों तरफ अणी स्थान मोती की तरह वर्तुल, स्निग्ध, कान्तियुक्त तथा आकर्षक हो तो जातक में प्रभाव, यश, चातुर्य, व्यावहारिकता तथा सफलता के गुण होते हैं। नुकीला, तीव्र तथा तेज अणी स्थान धूर्तता, छल, कपट, अविश्वस्तता, स्वार्थ एवं चंचलता आदि का परिचायक होता है। वक्र अणी स्थान वाले जातक जन्मजात दम्भी, पाखण्डी, रहस्यमय, विपरीत बुद्धि तथा विध्वंसक प्रवृत्ति के होते हैं। कतिपय विद्वानों का मत है कि अणी स्थान यदि बाईं ओर मुड़ा हुआ हो तो जीवन में प्रत्येक माध्यम से सुख प्रदान करता है—"अणिका जाकी वाम अंग ढरै—सुख सुलभ सब वाही नरै।"

निम्नगत अर्थात् नीचे की तरफ सन्तुलित रूप से ढला हुआ अणी स्थान

व्यवहारकुशलता, सामान्य जीवन, सभ्यता तथा सुखी व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करता है। गढ़ा हुआ, गोल, मांसल, दृढ़ तथा रक्तिम अणी स्थान उत्तम जीवन स्तर को इंगित करता है।

छिद्र स्थान—दोनों नथुनों में नीचे की ओर दो छिद्र होते हैं। इस स्थान को ही छिद्र स्थान के नाम से सम्बोधित किया जाता है। चित्र-१६, आकृति-ब ६।

छिद्र के आकार-प्रकार से निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं—

वर्तुल, सम, सुन्दर, सन्तुलित तथा स्निग्ध छिद्र सौन्दर्य, आकर्षण, प्रभाव, स्नेह, उदारता, शिष्टता, सभ्यता तथा आशा के द्योतक होते हैं। इसके विपरीत वक्र, विषम, भद्दे, असन्तुलित तथा शुष्क छिद्र असभ्यता, हीनता, दरिद्रता, उद्दण्डता, क्रोध, स्वार्थ, दम्भ तथा अविश्वस्तता को स्पष्ट करते हैं। प्रायः इस प्रकार की नासिका में केश तथा आन्तरिक मांसपेसियां दिखलाई पड़ती हैं। अतः लोक जीवन में भी यही कहा जाता है कि—"जो नकुआ के केश दिखाय—ताके निज कुटुम्ब सुख नाय" तथा "जाके नकुआ दिखत मांस—बह जग के सब जाने मांस" अर्थात जिसके नाक के बाल तथा मांस दिखते हों वह जातक अपने प्रियजनों से दुःखी तथा अपने स्वभाव से हीन होता है। तात्पर्य यह कि उपरोक्त लक्षण मानवीय चरित्र के किसी न किसी दौर्बल्य को अभिव्यक्त करते हैं:

उत्ति स्थान—दोनों छिद्रों के बीच की छोटी पट्टी—जो नीचे ऊपर के होंठ के मध्य जुड़ी रहती है—को उत्ति स्थान कहते हैं। चित्र-१६, आकृति-ब ७।

इस स्थान की स्थिति के आधार पर ही नासिका के विभिन्न कोण बनते हैं, जिसका विस्तृत अध्ययन हम पीछे कर चुके हैं। उसके अतिरिक्त इस स्थान के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सुन्दर, सम, सुगठित, दृढ़, सन्तुलित तथा पतला उत्ति स्थान साहस धैर्य, स्थिरता, विचार तथा विश्वास को व्यक्त करता है। इसके विपरीत अति बैठा हुआ, फैला हुआ, दुर्बल, वक्र तथा असन्तुलित उत्ति स्थान निराशा, भय, अज्ञान, भ्रम, अस्थिरता तथा उच्छृंखलता का प्रतीक होता है।

सम्पूर्ण नासिका के कुछ प्रमुख प्रकार

उपरोक्त सप्त स्थानों के विभिन्न मिश्रणों से मिलकर सहस्रों प्रकार की नासिकाओं का निर्माण होता है। उनमें से यहाँ हम सामान्यतया अधिक दृष्टिगोचर होने वाली नासिकाओं में से कतिपय पर विचार करेंगे।

सन्धि स्थान से नलिका स्थान तक सरल तथा सीधी, पतली एवं सरल तथा नीचे व आगे को गई हुई, उठावदार नाक वाले जातक में सरलता, स्नेह, सहजता तथा नम्रता तो होती है, किन्तु वे प्रायः लापरवाह, अस्वस्थ, जल्दबाज तथा धोखा खाने वाले होते हैं। ऐसे व्यक्तियों में व्यावसायिक बुद्धि भी होती है, किन्तु वे उसे व्यावहारिक रूप देने में प्रायः सफल नहीं होते। चित्र-१६, आकृति-१।

उठावदार नलिका, उभरे हुए पासे तथा कुण्ठित अणी स्थान अपने आप में इस बात का प्रतीक होता है कि तत्सम्बन्धी जातक में मानसिक तथा भौतिक विकास की क्षमता तो है, किन्तु अपने लक्ष्य तक पहुँचने में उसे विभिन्न कठिनाइयाँ, संघर्ष तथा कष्ट आयेंगे। ऐसे जातकों को सुर्खरू होने के पूर्व काफी ठोकरें खानी पड़ती हैं, परिणामस्वरूप जीवन में सफलता प्रायः देर से ही प्राप्त होती है। चित्र-१६, आकृति-२।

ऊपर से नीचे तक एकदम सरल घुमावदार नासिका जो अन्त में नुकीली हो, 'तोता नाक' कहलाती है। इसी आकार-प्रकार की नासिका को अंग्रेजी में 'Jewish Nose' कहते हैं। यदि यह बीच में एकदम वर्तुलाकार हो तो तोते की चोंच जैसी दिखाई पड़ती है तथा कम गोलाईदार हो तो चील के समतुल्य दृष्टिगोचर होती है। सामान्यतया अपने गुणधर्मानुसार ऐसी नाक वाले जातक नाटकीय, ढोंगी, धूर्त, मनन-चिन्तनहीन, नकल प्रवृत्ति-युक्त, ऊंची उड़ान वाले, घाघदृष्टि, उत्तेजित, चालाक, दम्भी, सतर्क तथा व्यापारकुशल हो सकते हैं। चित्र-१६, आकृति-३।

प्रक्षेपी, मोटा, रोमयुक्त तथा कठोर नथुना तथा सरल नलिकास्थान से युक्त नासिका दो प्रकार के चरित्रों का संयोग व्यक्त करती है। ऐसे जातक मन ही मन मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित रहते हैं। कभी वे एकदम सरल, सौम्य तथा गम्भीर दिखलाई पड़ते हैं तो कभी अचानक ही उत्तेजित आवेशी, क्रोधी तथा असन्तुलित हो जाते हैं। ऐसे लोग मन से भले ही बुरे

न हों, किन्तु अपने व्यवहार के कारण वे प्रायः आलोचना, उपेक्षा या घृणा के पात्र बन जाते हैं। चित्र-१६, आकृति-४।

ऊपर से नीचे एकदम सीधी, चौड़ी तथा आजू-बाजू से कुछ ऊपर उठे नथुनों वाली नाक वाले जातक आक्रामक, परिश्रमी, कर्मठ, आवेशी, संघर्ष-रत, साहसी और तीव्र बुद्धि के होते हैं। ऐसे जातक प्रायः किसी अन्य के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते तथा साथ ही अपने कार्यों में भी अन्य के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते तथा साथ ही अपने कार्यों में भी अन्य द्वारा विघ्न पसन्द नहीं करते। यदि इनको न छेड़ा जाय तो वे शान्त और सरल रहते हैं किन्तु उनके कार्यों में गतिरोध होते ही वे क्रोधित हो उठते हैं। चित्र-१६, आकृति-५।

उठा हुआ नलिका-स्थान, गढ़े हुए नथुने तथा तीव्र अणी प्रदेश अपने आप में एक आकर्षण केन्द्र होते हैं। ऐसे जातक अपनी नासिका के सौंदर्य के कारण विपरीत यौन वाले जातकों को अपनी ओर आकृष्ट करने में प्रायः अधिक सफल होते हैं। इनमें सरलता, मृदुवाणी, स्नेह, कल्पना, एकान्त-वास, प्रकृति-प्रेम आदि सभी गुण हो सकते हैं। इनका जीवन के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण नहीं होता। कल्पनालोक में विचरण करना तथा हवाईकिले बनाना इनका स्वभाव होता है। प्रायः ऐसे लोग अन्य लक्षणों के अनुसार अधिक वासनामय हो सकते हैं। सामान्यतया जीवन में प्रेम, मुहब्बत, आहें, निराशा तथा असफलता की प्राप्ति ही इनको अधिक होती है। ऐसे लोग अक्सर मित्रों या सम्बन्धियों द्वारा अधिक छले जाते हैं अथवा उनसे त्रास पाते हैं। चित्र-१६, आकृति-६।

नीचे से उभरा हुआ नलिका स्थान, सुदृढ़ नथुने और तीव्र अणी प्रदेश भी इस तथ्य का द्योतक होता है कि ऐसे व्यक्ति में उच्च कार्यक्षमता, तीव्र कर्मठता, दृढ़ विश्वास तथा उत्तम आत्मबल है। वे लोग प्रायः पूर्णरूपेण कर्म में विश्वास करते हैं, भाग्य में उनकी आस्था प्रायः नहीं होती। उदार-हृदयता, स्नेह, मृदुभाषी, गम्भीर, चिन्तन तथा उच्च व्यावहारिकता इनकी अपनी विशेष विशेषताएँ होती हैं। मार्गदर्शन, नेतृत्व तथा अध्यापन आदि क्षेत्र में वे प्रायः अधिक सफल होते हैं। चित्र-१६, आकृति-७।

उठा हुआ आरम्भ, दबा हुआ मध्य एवं सरल अणी तथा नथुना स्थान

जातक के स्वभाव एवं चरित्र में सरलता, उदारता, स्नेह, वासना तथा अव्यावहारिकता के प्रतीक होते हैं। ऐसे लोग तन-मन से सहयोग देने को तत्पर रहते हैं, किन्तु उनकी कटु वाणी एवं अव्यावहारिकता के कारण लोग उनको समझ नहीं पाते। प्रायः ऐसे जातक जीवन में सुख-दुःख की तरंगों पर हिलोरें खाते रहते हैं। इनके जीवन में विचित्र-सा उतार-चढ़ाव आता रहता है जिसके परिणामस्वरूप वे एक दीर्घ स्थायित्व एवं शान्ति से अपने आपको वंचित अनुभव करते हैं। चित्र-१६, आकृति-८।

उभरा हुआ मध्य नलिका स्थान, दबे हुए आदि और अन्त तथा छोटे, सन्तुलित एवं दृढ़ नथुने प्रायः अत्यधिक देखने में आते हैं। ऐसे लक्षणों से युक्त नासिका वाले जातक आशा, महत्त्वाकांक्षा, विश्वास तथा भावुक प्रकृति से संयुक्त होते हैं। उनका मानसिक विकास भी प्रायः अच्छा होता हैं, किन्तु इनकी इनकी यह सब बातें सैद्धान्तिक ही रहती हैं, वे दृढ़ परिश्रम, उच्च कर्मठता एवं तीव्र कार्यक्षमता के अभाव में उसे पूर्ण व्यावहारिकता नहीं दे पाते, परिणामस्वरूप वे अपने उद्देश्य एवं लक्ष्य की प्राप्ति में पिछड़ जाते हैं। यदि अन्य लक्षणों के अनुसार उनमें व्यावहारिकता की प्रवृत्ति हो तो वे जीवन में अधिक सफल होते हैं। चित्र-१६ आकृति-९।

प्रारम्भ उभरा, मध्य वर्तुलाकार ध्वंसित एवं भारी तथा उठे नथुनों वाली नाक इस बात का संकेत देती है कि आप किसी तीसमारखां से चर्चा कर रहे हैं। ऐसी नासिका वाले जातक में वाणी चातुर्य, आलोचनात्मक प्रवृत्ति, व्यंग्य भावना एवं दिखावा अधिक होता है। वे लोग विश्व में अपने आपको सर्वोत्तम मानते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे अपनी कमजोरियों को छुपाने में प्रायः सफल हो जाते हैं, किन्तु मन ही मन ईर्ष्या, द्वेष एवं कुण्ठा से ग्रस्त रहते हैं। चित्र-१६, आकृति-१०।

कपोल (गाल)

सामान्यतया गालों का क्षेत्र, चेहरे के दोनों ओर, ठोड़ी एवं हनु सहित कनपटी के निम्न छोर तक तथा मुख व नासिका के आसपास से कानपर्यन्त ही फैला हुआ रहता है। सामुद्रिक शास्त्र के अन्तर्गत गालों के आकार-प्रकार, वर्ण, स्निग्धता एवं कान्ति के अनुसार जातक के स्वभाव, चरित्र एवं कार्यक्षमता आदि का अनुमान लगाया जाता है। वैसे ज्योतिर्विज्ञान में तो गालों के उपरोक्त तथ्यों के आधार पर ग्रहों की स्थिति तक का भी पता लगाया जाता है जैसे आरक्त वर्ण, अग्नि कान्ति, शुष्क, अस्निग्ध एवं बैठे गालों से स्पष्ट होता है कि जातक पर मंगल ग्रह का प्रभाव अत्यधिक है, ऐसी स्थिति में मंगल सिंह या मेष राशि में, लग्न या सप्तम भाव में सूर्य या हर्षल ग्रह के निकटतम होना सम्भावित रहता है। इसके विपरीत गौर-मधुपिंगल वर्ण, उभरे, मांसल एवं स्निग्ध गाल एवं आकाश कान्ति से से प्रभावित प्रतीत होता है कि जातक का व्यक्तित्व गुरु ग्रह पर निर्भर करता है अर्थात् इससे स्पष्ट होता है कि कुण्डली में गुरु की स्थिति सर्वाधिक प्रबल है।

यहाँ हम गालों के विभिन्न तत्त्वों की स्थिति के आधार पर जातक के व्यक्तित्व पर विचार करेंगे—

कपोल वर्ण—मुख्य रूप से गालों का वर्ण प्रायः श्वेत, गुलाबी, रक्तिम तथा श्याम ही देखने में आता है। वर्ण तत्त्व के अन्तर्गत यह स्पष्ट हो चुका है कि शरीर वर्ण निर्धारण में रक्त तथा वर्णिम एंजाइमों का प्रमुख हाथ रहता है। रक्त की लाली उसके लाल कणों रैडकार्पसल्स पर आधारित रहती है। यदि रक्त में उक्त कणों की न्यूनता हो तो जातक में वह

सामान्य जीवन शक्ति नहीं होती जो पुरुषार्थ हेतु आवश्यक होती है, परिणामस्वरूप उसके चेहरे पर एक श्वेत मुर्दनी-सी आच्छादित रहती है। यह इस बात का संकेत देती है कि व्यक्ति में निराशा, अकर्मण्यता, हीनता, अस्वस्थता तथा अनिश्चितता की भावनाएँ हैं। ऐसे जातक शान्त, धीर, ठण्डे तथा भावुक होते हैं। यदि एंजाइम ग्लूटाथायोन रिडैक्टस के कारण हों तो वर्ण श्वेत किन्तु यदि रक्तिम कणों से परिपूर्ण हों तो जातक का वर्ण श्वेत तथा पीत के संयोगयुक्त मधुपिंगल होगा। इस वर्ग में पीले वर्ण के रक्त का आधार पीत वर्ण रहता है, पित्त के विकार के कारण यह पीला नहीं होता। इस प्रकार यह मधुपिंगल या गुलाबी तुल्य वर्ण जातक की सन्तुलित जीवन शक्ति का परिचायक होता है। फलस्वरूप ऐसे जातक में महत्त्वाकांक्षा, कर्मठता, बुद्धिविकास, सहनशीलता, विश्वास एवं सफलता आदि के गुण होते हैं। इससे आगे आरक्त वर्ण आता है। एकदम लाल वर्ण यह संकेत देता है कि जातक में श्वेत वर्ण के विपरीत एकदम अत्यधिक जीवन शक्ति है। ऐसे जातक साहसी, युद्धप्रिय, क्रोधी, उत्तेजित एवं आक्रामक होते हैं, यदि इसके साथ ही गाल भी स्निग्ध हों तो जातक का रुझान इस के साथ यौन की ओर जाता है। विशुद्ध पीला वर्ण रक्त में पित्त-विकार का प्रतीक होता है। ऐसे जातक का यकृत सामान्य कार्य न करने के कारण रक्त में पित्त का समावेश कर देता है जो जीवन शक्ति को हीन कर देता है, परिणामस्वरूप व्यक्ति उत्साहहीन, रोगी, नीरस व भयभीत हो जाता है। कपोल का काला रंग मैलेनिन एंजाइम की स्थिति एवं रक्त में अशुद्धता के अनुसार स्पष्ट होता है। यदि दोनों ही तत्त्वों से गहरा श्याम वर्ण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो तो जातक में हृदय-रोग, मादक द्रव्यप्रियता, निम्न विचारधारा, उद्विग्नता एवं चिड़चिड़ाहट को उत्पन्न करता है। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि श्वेत गालों पर रक्त विकार की काली झाईं को परखना कठिन होता है, अतः ऐसे समय जिह्वा, होंठ एवं नेत्रों के वर्ण पर विशेष गौर करना चाहिए।

कपोल स्निग्धता—प्रायः कई जातकों के गालों पर एक तैलीय चिकनाहट देखने में आती है। इस प्रकार की स्निग्धता सम्बन्धित व्यक्ति के सप्तसारों में से एक—चर्बी—सार की पर्याप्तता का सूचक होती है जो

यह स्पष्ट करती हैं कि जातक में उष्मा का सन्तुलन है। ऐसे जातक में रोग-निरोध क्षमता, सहनशीलता, विचारगति, धैर्य एवं विकसित बुद्धि होती है। ऐसे लोग क्षण में रुष्ट एवं क्षण में तुष्ट नहीं होते बल्कि अपनी बात के धनी होते हैं और प्रत्येक व्यवसाय में सूझ-बूझ रखते हैं। प्रायः शुक्र एवं गुरु प्रधान तथा चन्द्र से प्रभावित व्यक्तियों में न्यूनाधिक रूप से यह स्निग्धता दृष्टिगोचर होती है। यदि यह स्निग्धता सामान्य से अधिक प्रतीत हो तो जातक में अकर्मण्यता, स्थूलता एवं भोग की प्रवृत्ति अधिक होती है। ऐसे जातक में पृथ्वी तत्त्व का अधिक विकास रहता है। इसके विपरीत क्रोधी, आवेशी तथा यदि यह चिकनाहट न्यूनतम या बिल्कुल ही न हो तो जातक का साहसी एवं उत्तेजित स्वभाव का होना सम्भावित रहता है। ऐसे लोग अग्नि तत्त्व, मंगल तथा हर्षल आदि क्रूर ग्रहों से प्रभावित होते हैं।

अति मांसल कपोल—कहते हैं कि खाये के गाल छुपे नहीं रहते। जब गाल अधिक मांसल हों तो स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि जातक खाने के लिए जीवित है, जीवित रहने के लिए नहीं खाता। ऐसे जातक स्थूल शरीर, भोगी, समृद्ध, विलासी एवं दम्भी होते हैं। उनका मानसिक विकास शरीर की अपेक्षाकृत न्यून होता है, किन्तु यदि गाल सामान्य मांसल, स्निग्ध, मधु-पिंगल एवं कान्तिपूर्ण हों तो जातक में शारीरिक एवं मानसिक शक्ति सन्तुलित रूप में होती है। ऐसे जातक उच्च व्यापारी, अधिकारी या नेता हो सकते हैं। उनमें आकर्षण, प्रभाव एवं व्यावहारिकता के गुण होते हैं।

अति शुष्क कपोल—असन्तुलित आहार-विहार, मानसिक चिन्ता एवं द्वेष प्रवृत्ति वाले लोगों के गाल प्रायः अमांसल, शुष्क एवं बैठे हुए होते हैं। ऐसे लोग ऐश्वर्यहीन, अस्थिर, क्रोधी, चिड़चिड़े एवं बकवादी अधिक होते हैं। उनमें प्रायः रोग-निरोध क्षमता, सहनशीलना एवं धैर्य आदि गुण नहीं होते। बात-बात में आवेश, उत्तेजना एवं आक्रामक प्रवृत्ति, इनमें उभर कर सामने आती है। इसी विध्वंसक प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ऐसे लोग अन्य का एवं कभी-कभी स्वयं तक का विनाश कर बैठते हैं। इसके अतिरिक्त यदि बैठे हुए गालों पर स्निग्धता एवं रक्तिम वर्ण भी हो तो जातक में विचार-क्षमता, साहस, निडरता एवं नेतृत्वक्षमता होती है, किन्तु यदि पूर्णरूप से शुष्क, अमांसल, अस्निग्ध एवं हीन वर्ण हो तो रोग, चिन्ता, दरिद्रता, क्रोध

एवं असफलता आदि के प्रतीक होते हैं।

संवृत्त निम्न कपोल—इस प्रकार के गाल समान्य मांसल, गुलाबी वर्ण, स्निग्ध एवं कान्तियुक्त होते हैं। साथ ही इनके मध्य एक हल्का-सा गढ़ा होता है। प्रायः कभी-कभी ऐसे गालों वाले लोगों की ठोड़ी के स्थान पर भी एक हल्का-सा गढ़ा पड़ता है। वैसे संवृत्त निम्न कपोल अध्ययन, सौन्दर्य, सहनशीलता, चातुर्य, परिश्रम, यशोभिलाषा, उदारता, विपरीत यौन आकर्षण, ऐश्वर्य एवं समृद्धि के ही परिचायक होते हैं।

उपरोक्त प्रमुख वर्गीकरण के अतिरिक्त कपोल परीक्षण के समय विशेष रूप से उनके आकार-प्रकार, स्थिति, वर्ण, कान्ति एवं स्निग्धता आदि के सयोगों पर ध्यान देकर तत्त्व विशेष की प्रवृत्ति तथा अन्य तत्त्वों के प्रभाव के आधार पर ही फल निर्देश करना उपयुक्त होता है।

स्त्री विशेष फल—सामुद्रिक शास्त्र के अन्तर्गत पुरुष एवं स्त्री कपोलों के गुण दोनों को ही समफलदायी होते हैं, किन्तु जहाँ कपोल पर रोम (दाढ़ी-मूँछ) पुरुषत्व के परिचायक होते हैं, वहाँ रोमहीन गाल ही स्त्री सुलभ गुणों के प्रतीक होते हैं। स्त्रियों के गालों पर केश होना उनके स्वभाव में स्वतन्त्रता, उच्छृंखलता, आक्रोश एवं अप्राकृतिक चरित्र का द्योतक होता है। वस्तुतः स्त्री जातक के कपोल सामान्य मांसल, रोमविहीन, स्निग्ध, कान्तिपूर्ण एवं सवर्ण होना सौभाग्य, समृद्धि, यश, उदारता, स्नेह एवं श्रद्धा के सूचक होते हैं।

दाढ़ी-मूंछ

सामान्यतया पुरुषों के गाल, हनु, ठोढ़ी एवं दोनों होंठों के ऊपर-नीचे के भागों पर लगभग १७ वर्ष की आयु से ही रोम जमने प्रारम्भ हो जाते हैं।

जो वयस्क हो जाने के पश्चात् अपनी पूर्ण स्थिति में स्पष्ट रूप से दाढ़ी एवं मूँछों का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। यह केश स्त्रियों के प्रायः नहीं होते, किन्तु चिकित्सा-विज्ञान के अनुसार यदि पीयूष ग्रन्थि से एड्रोजन हारमोनों का अत्यधिक स्राव हो, जो कि अप्राकृतिक होता है तो स्त्रियों के मुखमण्डल पर भी न्यूनाधिक रूप से दाढ़ी तथा मूँछों का निकलना असम्भव नहीं होता।

एक युवा पुरुष के चेहरे पर, दाढ़ी मूँछों के औसतन ३०,००० केश होते हैं, इनकी सघनता प्रायः नासिका के नीचे, ऊपरी होंठ के ऊपरी भाग तथा मूल ठोढ़ी पर सर्वाधिक होती है, जहाँ ढाई वर्ग सेंटीमीटर में लगभग ७०० से ८०० तक केश गिने जा सकते हैं।

स्थायी रूप से दाढ़ी-मूँछ रखने वाले जातकों में प्रायः एक सहनशीलता होती है। मनोवैज्ञानिक आधार पर देखिए कि जहाँ अधिकांश व्यक्ति दाढ़ी-मूँछ नहीं रखते वहाँ कुछ व्यक्ति रखने लगते हैं तो उन्हें कई प्रकार की अच्छी-बुरी बातें सुनने को मिलती हैं। इन सब बातों को सहन करते हुए दाढ़ी-मूँछ किसी न किसी रूप में शीलता, स्वच्छ विचार एवं विश्वास के प्रतीक होते हैं।

लम्बी दाढ़ी—गाल, हनु तथा ठोढ़ी प्रदेश पर पूर्णतः जमी हुई, हृदय स्थल तक लम्बी पूरी दाढ़ी अच्छी-खासी घनी एवं प्रायः नीचे से नुकीली होती हैं। ऐसी दाढ़ी अन्य अंग लक्षणों के गुणावगुणों के अतिरिक्त, स्वलक्षणानुसार दृढ़ विश्वास, सहनशीलता, गाम्भीर्य, यम, नियम व संयम, अध्ययन, मनन, चिन्तन एवं सात्विक प्रवृत्तियों की परिचायक होती है।

द्विभाजित दाढ़ी—उपरोक्त प्रकार की ही लम्बी एवं घनी दाढ़ी यदि नीचे हृदय स्थल पर दो सम भागों में विभाजित-सी प्रतीत हों तथा दोनों ही भाग नुकीले हों तो जातक के मन एवं मस्तिष्क में द्वन्द्वात्मक विचारधारा का संकेत देती है। ऐसे जातक प्रायः आध्यात्म तथा भौतिकवाद को तुलनात्मक रूप से कसौटी पर कसते रहते हैं। वे किसी एक पर पूर्ण विश्वास एवं आस्था नहीं जमा पाते। अक्सर ऐसे लोग कभी शान्त, सौम्य एवं गम्भीर तो कभी चंचल, अस्थिर तथा उत्तेजित हो सकते हैं। यदाकदा भावुकता में वे अपना मार्ग भी बदल देते हैं और बाद में पश्चात्ताप करते हैं। सारांश यह है कि उनके मन एवं मस्तिष्क में दो विचारधाराएँ एक साथ चलती

हैं जिनमें वे प्रायः समन्वय नहीं कर पाते ।

विषम दाढ़ी—गाल पर केश तो हनु पर नहीं, हनु पर केश तो ठोड़ी पर नहीं; ठोड़ी पर केश तो गाल पर नहीं अथवा कहीं घने तो कहीं छितरे, ऐसी दाढ़ी विषम संज्ञा से सम्बोधित की जाती है । विषम दाढ़ी चंचलता, उद्दण्डता, उच्छृंखलता, अविश्वस्तता, कूटनीतिज्ञता, धूर्तता एवं विचित्र स्वभाव एवं चरित्र की परिचायक होती है ।

संकीर्ण दाढ़ी—केवल ठोड़ी पर ही प्राकृतिक रूप से उगने वाली लम्बी दाढ़ी को संकीर्ण कहते हैं । ऐसी दाढ़ी वाले जातक में गुप्त विद्याओं के प्रति एक अद्भुत रुझान होता है । ऐसे लोग प्रायः जादू-टोना, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, हिप्नोटिज्म, भूत-प्रेत एवं अन्य विचित्र रहस्यात्मक शास्त्रों, विद्याओं एवं विज्ञानों आदि के ज्ञाता तथा उनमें रुचि रखने वाले होते हैं ।

नवीन दाढ़ी—ऊपर-नीचे आजू-बाजू से कहीं क्लीन और कहीं कैंची से न्यूनाधिक कतरन की हुई फ्रैंच, रूसी या अरेबियन शैली की दाढ़ी रखने वालों में प्रायः अधिकांश नेता, चित्रकार, कवि, शायर, पत्रकार एवं अभिनेता आदि होते हैं । ऐसे जातक मूलतः बुद्धिवादी होते हैं, साथ ही इनमें अपनी परम्परा, संस्कृति एवं संस्कारों के प्रति भी श्रद्धा होती है । यह भी सत्य है कि वे प्राचीनता के अन्धभक्त नहीं होते, अपितु प्रगतिवादी एवं परिवर्तनवादी होते हैं, किन्तु उनके नवीन प्रयोगों का आधार प्राचीन तथ्य ही होते हैं । वे क्रान्ति चाहते हैं, किन्तु उनकी क्रान्ति की धारणा शान्तिमय होती है । सारांश में वे नवीनता के उपासक होते हैं, किन्तु पुरातन से भी उन्हें घृणा नहीं होती । ।

अस्त-व्यस्त दाढ़ी—ऐसी दाढ़ी प्रायः घनी, विस्तृत तथा लम्बी होती है, किन्तु सँवरी हुई नहीं होती । सदैव इधर-उधर लहराती, बिखरी हुई, ऊटपटाँग तथा अस्त-व्यस्त-सी दिखाई पड़ती है । ऐसी दाढ़ी वाले जातकों के दो प्रकार होते हैं । प्रथम तो वे जो कट्टरपन्थी, परम्परावादी, अन्धविश्वासी, दीन एवं हीन होते हैं एवम् द्वितीय वे जो विशुद्ध बुद्धिवादी, आदर्शवादी, मानवतावादी, दार्शनिक तथा उच्च श्रेणी के विचारक होते हैं, जिनको बाह्य दिखावे में कोई विश्वास नहीं होता ।

सारांश में दाढ़ी के विषय में समुद्रेण का कथन है कि—"दाढ़ी के केश

लम्बे, घने, पतले, चिकने तथा चमकीले हों तो शुभ होते हैं, जो जातक के बुद्धिगाम्भीर्य, आदर्श, सहनशीलता, संयम तथा यश के प्रतीक होते हैं।

एक प्राचीन धारणा के अनुसार श्मश्रु या मूंछ पुरुषार्थ तथा पुरुषत्व के सूचक होते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों का भी यही अनुभव है कि बिना दाढ़ी-मूंछ वाले व्यक्तियों तथा दाढ़ी-मूंछ वाली स्त्रियों की पीयूष ग्रन्थियों के उस स्राव में कहीं न कहीं कोई असन्तुलन तथा अवरोध होता है। जिसके परिणामस्वरूप कुछ अंशों में किसी न किसी रूप में ऐसे पुरुष वर्ग में नारी-सुलभ प्रवृत्तियाँ तथा स्त्री वर्ग में पुरुषतत्व गुणों की वृद्धि होना सम्भावित होता है, किन्तु केवल इसी लक्षण के आधार पर कोई गम्भीर निर्णय नहीं लिया जा सकता। सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से पुरुष वर्ग की विभिन्न मूंछ-शैलियों में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं।

लम्बी-नुकीली मूंछें—नोंकदार, लम्बी, सीधी या ऊपर को उठी हुई मूंछें साहस, अहं, वीरत्व, निडरता, हठ, विश्वास तथा कभी-कभी दुराग्रह, दुस्साहस, उद्दण्डता, उत्तेजना, क्रोध तथा आक्रामकता की परिचायक होती हैं। इसके साथ ही यदि दाढ़ी भी ताश के पत्तों के राजा जैसी, आजू-बाजू विभाजित तथा मुड़ी हुई हो तो भोग, वासना, दम्भ तथा अधिकार प्रवृत्ति में वृद्धि करती है।

अवनत बिखरी मूंछें—जिन व्यक्तियों की मूंछें मुख के दोनों ओर किनारों पर नीचे को झुकी हुई हों, उनमें विवेक, अवसरवादिता, सहनशीलता, समझौतावादी प्रवृत्ति तथा कुछ भीरुता होती है। यदि इसके साथ लम्बी-नुकीली दाढ़ी हो तो व्यक्ति में साहस, विश्वास, सत्यनिष्ठा, शान्ति तथा धैर्य के गुणों में वृद्धि हो जाती है, किन्तु क्लीन शेव के साथ उपरोक्त मूंछें हों तो उपरोक्त गुणावगुण यथावत् रहते हैं।

खड्ग सम मूंछें—प्रायः इनको लोग तलवारकट मूंछों के नाम से ही सम्बोधित करते हैं। ये आधुनिक काल की मूंछ शैलियों में सर्वाधिक प्रचलित हैं। प्रत्येक दस मूंछ रखने वाले व्यक्तियों में पाँच से अधिक व्यक्ति इस प्रकार की मूंछें रखते हैं। यह मूंछों की अपनी कोई प्राकृत मूल शैली नहीं, किन्तु एक सामान्य राजपूतकालीन परम्परागत शैली का प्रतीकात्मक स्वरूप है। ऐसे जातक प्रायः मध्यवर्गीय आर्थिक स्थिति, बाह्य दिखावा

किन्तु आन्तरिक खोखलापन, अपनी संस्कृति का मोह तथा नवीनता का आडम्बर आदि उहापोहों से युक्त होते हैं।

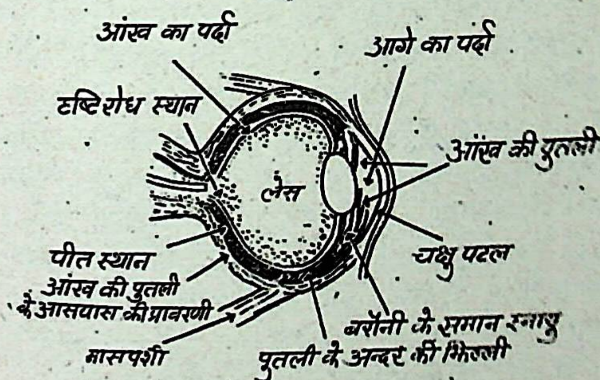
तितली सम मूँछें—कतिपय लोग नासिक के उत्तिस्थान के ठीक नीचे ऊपरी होंठ के मध्य भाग में मूँछों का एक हल्का-सा गुच्छा रखते हैं, जिसके आस-पास दोनों ओर का भाग साफ रहता है। यदि आप इसे दूर से देखें तो प्रतीत होगा कि मानों कोई छोटी-सी काले रंग की तितली वहाँ पंख फैलाये बैठी हो। प्रायः उच्च अधिकारी वर्ग में ऐसी शैली विशेष रुचिकर होती है। ऐसे जातकों में विकसित बुद्धि, वाक्चातुर्य, समृद्धि तथा सूझ-बूझ तो होती है, किन्तु इसके साथ ही उनमें भीरुता, खुशामद, चापलूसी तथा चाटुकारिता की प्रकृति भी रहती है। वे अपने भौतिक स्वार्थ हेतु मन से न चाहते हुए भी कभी-कभी सत्य से विमुख हो असत्य का मार्ग ग्रहण कर लेते हैं।

कंघी सम मूँछें—ऐसी मूँछों के केश लगभग आधा इंच या उससे कुछ छोटे, कैंची से कटे रहते हैं। इनकी यह विशेषता होती है कि केश आजू-बाजू न जाकर ऊपरी होंठ को ढँके रहते हैं, जो देखने में ऐसी लगती हैं मानो ऊपर के होंठ पर एक छोटी कंघी रखी हुई हो। यह मूँछें आदर्श, सिद्धान्त, त्याग, साहित्यप्रेम एवं उदारता की परिचायक होती हैं।

क्लीन शव—इस प्रकार के जातक, जो नियमित शेव करते हैं प्रायः समय के पाबन्द, मुँहफट, स्वच्छन्दताप्रिय, दिखावापसन्द तथा शोकीन प्रवृत्ति के होते हैं। इनकी अन्य विशेषताएँ अन्य तत्त्वों तथा लक्षणों के अनुसार परखनी चाहिएँ। स्थूल रूप से इनमें दाढ़ी-मूँछें रखने वालों की तरह सहनशीलता का गुण अपेक्षाकृत कम होता है।

नेत्र (आँखें)

आत्मा का सच्चा प्रतिबिम्ब नेत्रों में दिखाई पड़ता है। नेत्रों का सूक्ष्म निरीक्षण व्यक्ति के मन की स्थिति को अन्य लक्षणों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट कर देता है। किसी की दृष्टि तीर-सी तेज चुभती है तो किसी की नजरें सुरा की-सी मादकता लिए होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति की आँखों में स्नेह, घृणा, क्रोध, सौम्यता, करुणा, दया, सरलता, चपलता, उच्छृंखलता, आशा, विश्वास; निराशा या शून्यता आदि में से कोई एक प्रवृत्ति समय तथा परिस्थिति के अनुसार स्पष्ट देखने को मिल सकती है। उसी के अनुरूप तत्सम्बन्धी व्यक्ति की मनस्थिति का रहस्य स्वयं ही उद्घाटित हो जाता है।

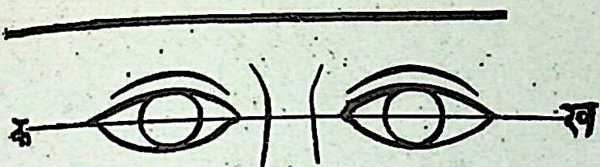


चित्र क्रमांक-१७

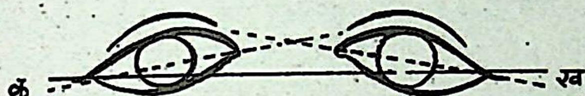
चिकित्सा-विज्ञान के अनुसार नेत्र के बाह्य भाग पर एक पतली-सी पारदर्शी परत होती है जिसे चक्षुपटल या कार्निया कहते हैं। इसके आस-पास का भाग श्वेत वर्ण का होता है। चक्षुपटल के ठीक पीछे एक काली पतली-सी झिल्ली होती है जिसके मध्य में एक छिद्र होता है जिसे बाहुली या प्यूपिल के नाम से जाना जाता है। गौर वर्ण वाले लोगों के नेत्रों में यह काली झिल्ली नीले रंग की होती है। इसके पीछे लैंस होता है जो आँख के पिछले पर्दे पर, दिखलाई पड़ने वाली वस्तुओं की सही आकृति अंकित करता है। इसी आकृति को पर्दे से सम्बन्धित नाड़ी तत्सम्बन्धी अनुभूति के लिए मस्तिष्क तक पहुँचाती है। देखिए चित्र-१७।

नेत्रों के आकार-प्रकार, स्थिति, वर्ण, स्निग्धता आदि से मानव शरीर की विभिन्न ग्रन्थियों की प्रभावक्षमता का स्थूल अनुमान सहज हो जाता है, जैसे विस्तृत, उन्नत तथा आगे को निकली हुई पुतलियों वाले जातक में गलग्रन्थियाँ (Thyroids) विकसित होती हैं, इसके विपरीत धंसी हुई, संकुचित एवं छोटी आँखों वाले लोगों पर गुर्दाग्रन्थि (Adrenal) तथा पीयूष ग्रन्थि (Pituitary) का अधिक प्रभाव होता है। इस प्रकार उक्त ग्रन्थियों की स्थिति के अनुसार जातक के स्वभाव तथा चरित्र पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। अस्तु, यहाँ हम उपरोक्त वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर निर्मित सामुद्रिक के लक्षण संकेतों के अनुसार नेत्रों का अध्ययन करेंगे।

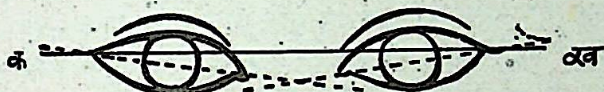
यदि किसी व्यक्ति के दोनों नेत्रों के बाह्य किनारों के बिन्दुओं को जोड़ते हुए एक काल्पनिक रेखा क ख का अनुमान किया जाय तो नेत्रों की स्थिति का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। इस काल्पनिक क्षितिज रेखा से यह तथ्य प्रकट होते हैं। यदि उक्त क ख रेखा दोनों नेत्रों के बाह्य तथा आन्तरिक, दोनों किनारों को स्पष्ट, सीधा जोड़ती हो तो ऐसे व्यक्ति में सन्तुलन, विवेक, धैर्य, सहृदयता, ज्ञान, जिज्ञासा, अनुभूति, संवेदना तथा अभिलाषा आदि के गुण अधिक रहते हैं। ऐसे जातक प्रत्येक बात एवं कार्य को सोच-समझकर करते हैं। उनके मन तथा मस्तिष्क में कोई प्रबल विरोधाभास नहीं होता। न तो वे भावुकता में आकर उत्तेजित ही होते हैं और न ही अन्याय के समय मौन बैठते हैं। वस्तुतः उनके कहने-करने में एक दृढ़ सन्तुलन रहता है। चित्र-१८, आकृति-१।



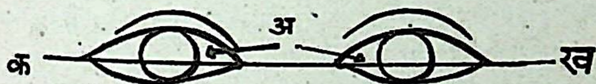
१



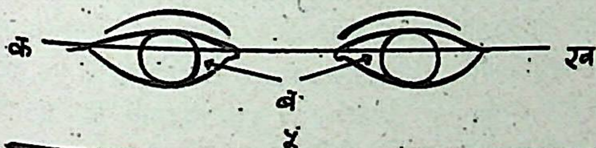
२



३



४



५

नेत्र प्रकार

चित्र क्रमांक-१८

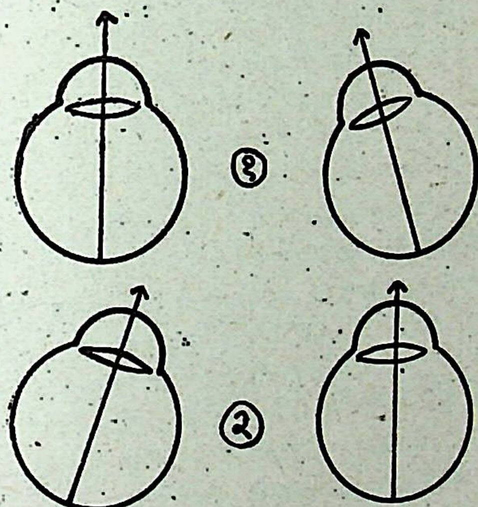
यदि दोनों नेत्रों के बाह्य किनारे तो इस क ख क्षितिज रेखा पर हों किन्तु दोनों आन्तरिक किनारें ऊपर ललाट की ओर ऊँचे उठे हुए हों तो ऐसे नेत्र उर्ध्वगत कहलाते हैं। इनमें सम-नेत्रों की सन्तुलनात्मक प्रवृत्तियों की अपेक्षा उच्च ज्ञान, आदर्श, महत्वाकांक्षा, अध्ययन, मनन एवं चिन्तन आदि के गुण अधिक विकसित होते हैं। ऐसे लोग दार्शनिक, विचारक, वैज्ञानिक एवं साहित्यकार हो सकते हैं किन्तु इनमें जीवन की व्यावहारिक प्रवृत्तियां अपेक्षाकृत कम होती हैं, परिणामस्वरूप लोग इनको समझ नहीं पाते। वे अच्छे मार्गदर्शक, विश्वस्त सहयोगी एवं उत्तम गुरु होते हैं, किन्तु उनकी एकान्तप्रियता, मौन प्रवृत्ति एवं उच्च विचारधारा उन्हें सामान्य जनसमुदाय से कुछ विलग ही रखती है। चित्र-१८, आकृति-२।

यदि नेत्रों की स्थिति उपरोक्त के ठीक विपरीत हो अर्थात् नेत्रों के दोनों आन्तरिक किनारे क ख से नीचे नासिका अणी की ओर झुके हुए हों तो जातक में कर्मठता, परिश्रम एवं बुद्धि तो होती है किन्तु वे उसका उपयोग भौतिक साधनों के जुटाने में करते हैं। उनमें आदर्श की अपेक्षा यथार्थ को चाहने की प्रवृत्ति अधिक होती है। ऐसे लोग व्यवहारकुशल, सामाजिक एवं अनेक मित्रों वाले होते हैं। किन्तु यदि ऐसे नेत्रों का झुकाव असामान्य हो तो उनमें स्वार्थ, दम्भ, क्रोध, छल एवं नीचता के दुर्गुण होना असम्भव नहीं होता। इसलिए कई विद्वान ऐसे अधोगत नेत्रों को शुभ नहीं मानते। वस्तुतः नेत्र जितने ही कम झुके हों उतने ही व्यावहारिकता, सहजता तथा उदारता के द्योतक होते तथा जितने अधिक झुके हों उतने ही स्वार्थ, दम्भ तथा हीनता के प्रतीक होते हैं। चित्र-१८, आकृति-३।

यदि दोनों नेत्रों के वाह्य तथा आन्तरिक किनारों की स्थिति रेखा क ख पर हो किन्तु क्षितिज रेखा से नेत्र विभाजन में, नेत्र का ऊपरी भाग नीचे के भाग से अपेक्षाकृत अधिक चौड़ा हो तो ऐसे जातक में उत्साह, लगन, परिश्रम, महत्त्वाकांक्षा, ज्ञानपिपासा तथा सफलता आदि के गुण होते हैं। यदि ऐसे नेत्र ऊर्ध्वगत हों तो व्यक्ति में उच्च भावनाएँ, विश्वास तथा असामान्य कार्य करने की प्रवृत्ति होती है किन्तु यदि नेत्र अधोगत हों तो व्यावहारिकता, चातुर्य एवं भौतिक समृद्धि की विशेषताएँ होती हैं। चित्र-१८, आकृति-४।

यदि नेत्र विभाजन रेखा से नेत्र का निम्न भाग ऊपरी भाग की अपेक्षाकृत तुलनात्मक रूप से अधिक बड़ा हो तो जातक में चंचलता, अस्थिरता, अकर्मण्यता तथा अचेतना की प्रवृत्तियाँ अधिक विकसित होती हैं। यदि ऐसे नेत्रों में उर्ध्वगत नेत्रों की स्थिति भी हो तो जातक के उपरोक्त दुर्गुणों में न्यूनता आ जाती है और वे निराशावादी, दर्शन तथा साहित्य के अनुयायी हो जाते हैं, किन्तु यदि ऐसे नेत्रों में अधोगत नेत्रों के गुणों की स्थिति हो तो उनके निम्न झुकाव के अनुपात से उपरोक्त दुर्गुणों में और अधिक अभिवृद्धि होना सम्भावित रहता है। अधोगत और नीचे से अधिक चौड़े नेत्र वाले लोगों में निष्ठुरता, आक्रामकता, असभ्यता, अश्लीलता, पैशाचिकता तथा समाज विरोधी कार्यों की प्रवृत्ति अत्यधिक हो सकती है। चित्र-१८, आकृति-५।

प्रकृति भी कभी-कभी, किसी-किसी के साथ बड़ा विचित्र खिलवाड़ करती है। अक्सर ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं जिनके नेत्र तिरछे होते हैं।



चित्र क्रमांक-१९

सामुद्रिक भाषा में इन्हें वक्र नेत्र कहते हैं। ऐसे नेत्रों की पुतलियों के मध्य यदि दो रेखाओं की कल्पना की जाय तो वे जनसामान्य के नेत्रों की तरह समानान्तर नहीं होतीं। यह असमानता या तिरछापन तीन प्रकार का होता है—(अ) एक आँख सीधी एवं दूसरी का तिरछापन सदैव अन्दर नाक की ओर, (ब) एक आँख सीधी एवं दूसरी टेढ़ी किन्तु सदैव बाहर की ओर एवं (स) दोनों में से कोई भी आँख कभी सीधी और कभी तिरछी आदि। चित्र क्रमांक-१९ की आकृतियों से यह तिरछापन स्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार के नेत्रों वाले लोगों में न्यूनतम दृश्यक्षमता, नेत्र-पर्दे पर निर्मित छाया की अस्पष्टता, एक बिम्ब का फ्यूज होना या एक नेत्रीय दृष्टि एवं एक तरफ की वस्तुओं का दिखलाई पड़ना तथा दूसरी ओर का बिना गर्दन घुमाए दिखलाई पड़ना आदि विभिन्न दोषों में से कतिपय होते हैं।

नेत्रों की इस अक्षमता, न्यूनता या दोष आदि के कारण ऐसे जातक में प्रायः इनफीरियारिटी काम्पलेक्स (हीन भाव), उपेक्षा एवं द्वेष की भावनाएँ जागृत हो जाती हैं, परिणामस्वरूप ऐसे जातक कभी-कभी उत्तेजित, क्रोधी, एवं आक्रामक तक भी हो सकते हैं किन्तु दूसरी ओर ये लोग प्रायः अपनी बातचीत, व्यवहार एवं स्वप्रदर्शन में सदैव अपने आपको इस तरह प्रस्तुत करते हैं जैसे उनमें सामान्यजनों की तुलना में कोई हीनता नहीं है। धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति इतनी अधिक विकसित हो जाती है कि वास्तव में वे अपने क्षेत्र के सामान्य व्यक्ति से एक कदम आगे दिखलाई पड़ते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि ऐसे लोगों में एक गुण अधिक होता है।

यदि ऐसे नेत्र ऊर्ध्वगत या उनका ऊपरी भाग अधिक चौड़ा हो तो जातक गम्भीर, सौम्य, शान्त एवं कर्मठ होता है। यदि सम हो तो जातक भौतिक साधनों को जुटाने में व्यावहारिक रूप से पूर्णरूपेग सफल होता है तथा यदि ऐसे नेत्र अधोगत या निम्न भाग में अधिक चौड़े हों तो जातक धूर्त, लम्पट, जुआरी, छली, कपटी, अविश्वस्त, ढोंगी, चोर या नीच आदि में से एक या अनेक गुणों का अधिकारी होता है।

उपरोक्त अवगुणों के अतिरिक्त नेत्रों के कुछ अन्य प्रकार भी माने जाते हैं, जो इस प्रकार हैं।

कमलपत्र के आकार एवं मधुपिंगल वर्ण के नेत्र अत्यन्त सुन्दर एवं

श्रेष्ठता के प्रतीक होते हैं। ऐसे नेत्र यश, ज्ञान, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, समृद्धि एव सरलता आदि को प्रदान कर जातक के जीवन को सुखमय बनाते हैं।

अनारकली के आकार एवं वर्ण की आँखें सौन्दर्य, मोह, मादकता, भोग-विलास, ऐश्वर्य एवं रोग की परिचायक होती हैं। ऐसे जातक प्रायः यम, नियम और संयम तथा आहार-विहार से हीन होते हैं तथा अत्यधिक भोगों के कारण रोगग्रस्त हो जाते हैं।

विशुद्ध श्वेत वर्ण की काली पुतलियों से युक्त तथा मत्स्याकृति नेत्र, मीनाक्षी कहलाते हैं। यह चंचलता, मृदुता, उदारता, दया एवं भोलेपन के परिचायक होते हैं। इस प्रकार के नेत्र पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में प्रायः अधिक देखे जा सकते हैं जो उनके नारी सुलभ गुणों को स्पष्ट करते हैं।

नेत्रों का आकार यदि गोल हो अर्थात् उनकी लम्बाई कम हो तथा एक आवृत्त से युक्त प्रतीत होते हों तो ऐसे जातक में अविकसित बुद्धि, स्वार्थपरता, अज्ञान एवं मूर्खता आदि के दुर्गुण असम्भव नहीं होते। इसके साथ ही ऐसे नेत्रों का वर्ण यदि भूरा हो तो योन-पिपासा के साथ उपरोक्त अवगुणों में और भी वृद्धि सम्भव होती है, किन्तु यदि नीला या काला वर्ण हो तो उपरोक्त दुर्गुणों में न्यूनता आ जाती है।

लम्बे, नीले या काले, आसपास श्वेत एवं उनमें रक्तिम डोरे हों तो ऐसे नेत्र उत्तम शरीर क्षमता, उच्च जीवन शक्ति एवं कर्मठता के परिचायक होते हैं। ऐसे जातक किसी भी क्षेत्र में कार्यरत हों तो वे सत्यनिष्ठ होते हुए दृढ़ता, विश्वास एवं धैर्य के साथ आगे बढ़ते हैं और जीवन में प्रायः सफल होते हैं।

इसके अतिरिक्त विवर्ण, अस्निग्ध, असामान्य, असन्तुलित, अत्यधिक छोटे एवं अन्दर को धँसे हुए दोषपूर्ण नेत्र अस्वस्थता, क्रोध, चिड़चिड़ाहट, उच्छृंखलता, अविश्वास एवं तमोगुणी प्रवृत्ति के द्योतक होते हैं।

दृष्टि

दृष्टि से तात्पर्य देनखा, निरखना, निगाहें या नजरों आदि से होता है। विभिन्न स्त्री-पुरुषों के दृष्टिपात करने के अलग-अलग ढंग होते हैं। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार दृष्टि का फल-निर्देश इस प्रकार होता है।

एक अभिमानी, दम्भी एवं पाखण्डी व्यक्ति अपनी दृष्टि प्रायः अपने सम्मुख वाले व्यक्ति के सिर पर केन्द्रित रखता है। मनोवैज्ञानिक रूप से ऐसे जातक अपनी निगाहें नीची रखने में अपना अपमान समझते हैं।

साहसी, सत्यनिष्ठ, निष्कपट एवं दृढ़ चरित्र व्यक्ति आँख से आँख मिलाकर चर्चा करते हैं। उनकी दृष्टि में एक प्रबल आत्मविश्वास, दृढ़ता, धैर्य एवं स्थिरता के लक्षण होते हैं।

सज्जन, स्नेही, उदार, दयावान एवं विनम्र स्वभाव के व्यक्ति की दृष्टि प्रायः अपने सामने वाले व्यक्ति के मुखमण्डल पर विचरती हुई रहती है। वे लोग सामने वाले व्यक्ति की स्थिति को समझने का पूर्ण प्रयास उसके चेहरे को पढ़कर करते हैं।

लज्जा, संकोच, शील एवं शर्म से युक्त प्रवृत्ति वाले लोगों की नजरें अपने सामने वाले व्यक्ति के वक्षस्थल पर केन्द्रित रहती हैं, वे कभी आंख से आँख मिलाकर चर्चा नहीं करते।

कलुषित भावना, पाशविक यौन-पिपासा एवं भ्रष्ट चरित्र के लोगों की दृष्टि अपने सम्मुख वाले व्यक्ति के कटि प्रदेश पर विचरण करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

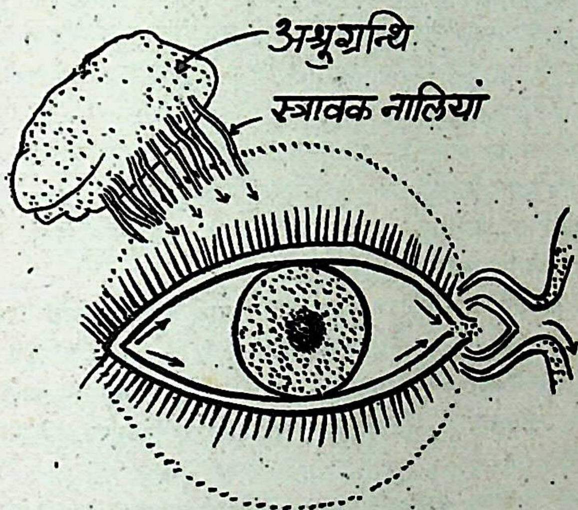
अपराधी, पापात्मा, गुनहगार एवं नीच चरित्र वाले व्यक्ति की निगाहें नीचे धरती पर रहती हैं एवं यदि उनमें इसके साथ पश्चात्ताप या क्षमा की चाह हो तो वह अपने सामने वाले व्यक्ति के पैरों की ओर देखते हैं।

विश्वासघाती, भीरु, दुष्ट, कपटहृदय एवं निन्दक व्यक्ति प्रायः अपनी नजरों को इधर-उधर घुमाकर नजरें चुराने का प्रयास करता है। इसके साथ ही यदि उसके सामने वाला व्यक्ति जैसे ही जाने को उद्यत होता है तो उसकी दृष्टि जाने वाले व्यक्ति की ठीक पीठ पर केन्द्रित हो जाती है।

रुदन

रोने के मामले में अन्य तत्त्वों के साथ अश्रुओं का भी अपना बड़ा महत्त्व होता है जो नेत्र से सम्बन्धित होते हैं। आँसुओं के भी कई प्रकार होते हैं जैसे भावनाजन्य, प्रतिवर्ती, सजल एवं रासायनिक आदि-आदि। उक्त सभी प्रकार के अश्रुओं का केन्द्र प्रमुख रूप से अश्रुग्रन्थि होती है जो

नेत्र के रैटिना से लगी ऊपर की ओर स्थित होती है, चित्र-२०। इसके अतिरिक्त पलकों के नीचे स्थित और भी कई ग्रन्थियां अश्रु-निर्माण में सहायक होती हैं। आंख पर आंसुओं की तीन परत होती हैं—पनीली परत, श्लेषमल परत एवं तैलीय परत—जो विभिन्न ग्रन्थियों से सम्बन्धित हैं। यहां हम अश्रु एवं उनकी परतों के विभिन्न विभेदों की गहराई में न जाकर केवल भावनाजन्य या साइकोजनिक अश्रुओं के सम्बन्ध में, रुदन के सन्दर्भ में ही संक्षिप्त चर्चा करेंगे। जैसा कि भावनाजन्य शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है कि



अश्रु प्रक्रिया

चित्र क्रमांक-२०

इनका सम्बन्ध मानव मन से होता है। जैसे ही सहनशक्ति से अधिक दुःख या सुख का असर मानव मन पर पड़ता है, उसकी प्रक्रिया शरीर की विभिन्न ग्रन्थियों पर पड़ती है और जब यह प्रभाव अश्रुग्रन्थि पर पड़ता है तो उससे अश्रु-स्राव होता है जो स्रावक नलियों के माध्यम से बहकर नेत्रों तक पहुंच

जाता है और व्यक्ति के आँसू बह निकलते हैं। रुदन के अन्तर्गत उन्हीं आँसुओं को लिया जाता है जो दुःख अथवा वेदना के प्रभाव से प्रस्फुटित होते हैं, अति सुख भावना के कारण नहीं।

यह तो हुआ रुदन का एक पक्ष जिसका सम्बन्ध नेत्रों की अश्रु प्रक्रिया से होता है। अब दूसरा पक्ष वह होता है जिसका सम्बन्ध मुख एवं कण्ठ अर्थात् स्वर से होता है। इस दूसरे पक्ष में मौन रुदन होता है, जिसमें केवल अश्रु बहते हैं, कोई स्वर स्फुटित नहीं होता। यह अपवाद होता है। शेष सभी प्रकार के रोने में कोई न कोई स्वर अवश्य निकलता है। सामुद्रिक शास्त्र में रुदन क्रिया के अन्तर्गत भावनाजन्य अश्रुओं के साथ स्वर पर ध्यान केन्द्रित कर उसका फलादेश निर्धारित किया जाता है। कतिपय रुदन विभेद इस प्रकार हैं।

मौन रुदन—जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इस प्रकार के रुदन में जातक के मुख से कोई स्वर नहीं निकलता अपितु नेत्रों से अश्रु बहते रहते हैं। ऐसे जातक अत्यधिक सहनशील, आत्मक्रोधी, स्पष्टहृदय, त्यागी, समर्पणप्रिय एवं विश्वस्त होते हैं।

गम्भीर रुदन—ऐसे रुदन में अश्रुओं के साथ मुख से एक गम्भीर स्वर भी फूटता है जो इस बात का परिचायक होता है कि जातक का हृदय पूर्ण वेदना से युक्त है तथा वह वास्तव में आत्मा से दुःखी है, रोने का केवल ढोंग नहीं कर रहा है। ऐसे जातक स्नेही, भावुक, निष्कपट, संवेदनशील एवं स्पष्टहृदय होते हैं।

हिचकी रुदन—कुछ व्यक्तियों तथा विशेषकर बालकों में रुदन के साथ हिचकी का स्वर भी स्वाभाविक रूप से प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार के जातक बालसुलभ प्रकृति के अति निकट होते हैं। उनमें सहनशीलता का गुण अपेक्षाकृत कम होता है। वे हृदय के इतने कोमल होते हैं कि किसी भी वेदना के प्रभाव को सरलता से सहन नहीं कर पाते।

कर्कश रुदन—एक तीव्र चीत्कारपूर्ण कर्कश स्वर में रोने वाले जातक अपने कष्ट को अधिक से अधिक लोगों में प्रकट करने की मनोवृत्ति से युक्त होते हैं। ये लोग अपने घर की मान-मर्यादाओं को त्याग केवल स्व सुख-दुःख की चिन्ता करने वाले, स्वार्थी, ढोंगी तथा अविश्वस्त होते हैं।

मगर रुदन—मगर के आंसू तो प्रायः सभी जानते हैं। ऐसे जातक केवल ढोंग करते हैं, रोते नहीं। वे लोग किसी भी कारणवश अपने सामने वाले व्यक्ति को प्रभावित करने के निमित्त कृत्रिम रुदन करते हैं। वे लोग कभी-कभी जोर-जोर से तथा अंग पीट-पीट कर भी रोते हैं। वे लोग छली, कपटी, पाखण्डी, धूर्त, आडम्बरी तथा अविश्वस्त होते हैं।

भ्रू (भौंहें)

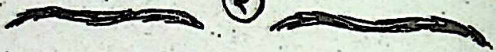
दोनों नेत्रों के ऊपर, ललाट के निम्न छोर पर स्थित रेखाबद्ध-सी केश-राशि को संस्कृत में भ्रू तथा हिन्दी में भौंहों के नाम से सम्बोधित किया जाता है। भौंहों के आकार-प्रकार तथा स्थिति के अनुसार सम्बन्धित जातक के चरित्र तथा स्वभाव आदि की विभिन्न बातों का पता चलता है। हालांकि, भौंहों का नेत्रों से स्पष्ट तो कोई सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु आंखों के अति निकट इनकी स्थिति होने से प्रायः सभी सामुद्रिकवेत्ता इनका अध्ययन नेत्रों के साथ ही करते हैं। इसी परम्परा के अनुसार हम यहां इसका अध्ययन करेंगे।

मध्य भाग में कुछ ऊपर को उठी हुई, आस-पास के किनारों पर कुछ निम्नगत तथा साधारण बालों से युक्त तथा मध्य में विभक्त भौंहें सामान्य-तया साधारण बुद्धि, मध्यम आर्थिक स्थिति, परिश्रमशीलता, कई शास्त्रों को जानने की प्रवृत्ति, अवसरवादी स्वभाव, देवी-देवताओं में अपूर्ण विश्वास, ऋणग्रस्तता, क्रमी, निराशा तथा अस्थिरता आदि मनोवृत्ति की द्योतक होती हैं। उपरोक्त भौंहों के साथ प्रायः सामान्य सीधे नेत्र होते हैं, किन्तु यदि अधोगत या निम्न चौड़े नेत्र हों या उनकी पुतलियों का वर्ण भूरा व आसपास रक्तिम हों तो जातक में नास्तिकता, अविश्वस्तता, कठोरता व भ्रष्टाचारिता के दुर्गुण होना सम्भावित है। चित्र-२१, आकृति-१।

मध्य भाग में नीचे दबी हुई, आसपास की तरफ ऊंची उठी हुई, निम्न छोर वाली एवं हल्के रोमों से युक्त भौंहें सौंदर्यप्रियता, चंचल प्रकृति, कलात्मक अभिरुचि, परस्त्री अनुरक्तता, कुशल वाक्पटुता एवं भोग भोगने में तत्परता आदि गुणावगुणों की प्रवृत्ति की परिचायक होती हैं। चित्र-२१, आकृति-२।

भौंहें



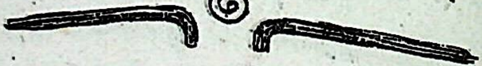
















चित्र क्रमांक-२१

ऐसी भौंहों से युक्त जातक के नेत्र साधारण, सीधे, काली या नीली पुतलियों से युक्त तथा आसपास से श्वेत वर्ण वाले होते हैं। इसके साथ ही इन नेत्रों की दृष्टि में मदिरा की-सी मादकता भी रहती है जो विपरीत योन वाले व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करती रहती है।

नासिका के सन्धि स्थान के आसपास ऊपर उठे छोर तथा कनपटी की ओर नीचे दबे किनारों वाली भौंहें, जो मध्य में सम्बद्ध न हों, व्यक्ति में गम्भीरता, अध्ययनप्रियता, उच्च विचार, आस्तिकता, परम्परागत एवं धर्मप्रियता आदि का स्पष्ट संकेत देती हैं। चित्र-२१, आकृति-३।

उक्त प्रकार की भौंहों के साथ यदि ऊर्ध्वगत या ऊपरी भाग में चौड़ी पुतलियों से युक्त नेत्र हों तो जातक में पुण्य, दान, त्याग, सेवा-सुश्रुषा, निस्वार्थता एवं आदर्शप्रियता के गुणों में और अधिक वृद्धि हो जाती है।

यदि भौंहों की स्थिति आन्तरिक छोरों पर अधोगत एवं बाह्य किनारों पर ऊर्ध्वगत हो तो जातक व्यवहारकुशल, प्रशंसक, प्रगतिशील, वाक्पटु, दुःखी, भौतिकताप्रिय, एवं कठोर स्वभाव का होता है। चित्र-२१, आकृति-४।

ऐसे जातक के नेत्र प्रायः लम्बे, रक्तिम आभा से युक्त एवं तीक्ष्ण दृष्टि से पूर्ण होते हैं। यदि इनकी आँखें अधोगत या निम्न क्षेत्र में चौड़ी हों तो उक्त गुणावगुणों में और अधिक वृद्धि करती हैं, किन्तु यदि ऊर्ध्वगत या ऊपरी भाग में चौड़ी तथा श्वेत आभा वाली हों तो जातक में स्वप्नदर्शिता, कल्पनाशीलता, वासनाप्रियता एवं न्यून कार्यक्षमता को इंगित करती हैं।

सघन रोम, नासिका सन्धि स्थान की ओर पतली तथा बाहर चौड़ी, झाड़दार भौंहें, सबल वाक्शक्ति, नेतृत्वप्रियता, कूटनीतिज्ञता, छल, प्रपंच, अधिकारक्षमता, भोग-विलास, ख्याति, अल्प सन्तति, प्रलाप एवं गुप्तरोग आदि की परिचायक होती हैं। चित्र-२१, आकृति-५।

साधारणतया ऐसी भौंहों के साथ विस्तृत, उभरे एवं विशाल नेत्र होते हैं, जो प्रायः सम, कमलाकृति या कभी-कभी वक्र भी हो सकते हैं। इनका वर्ण मधुपिंगल अथवा रक्तिम होता है और पलकों की मात्रा दीर्घ होती है। यदि ऐसे नेत्र ऊर्ध्वगत हों तो जातक न्यायी, विवेकी तथा धैर्ययुक्त होता है, किन्तु यदि अधोगत हों तो जातक का क्रोधी, अन्यायी एवं अस्थिर होना सम्भव रहता है।

भ्रूमध्य में जुड़ी हुई, सघन, चौड़ी एवं बाहर की ओर पतली तथा नुकीली भौंहें जातक के स्वभाव एवं चरित्र में महत्वाकांक्षा, उच्च अभिलाषा, राजस बुद्धि एवं कर्मठता का प्रादुर्भाव करती हैं किन्तु ऐसे व्यक्ति स्वार्थ, भावुकता, सन्देह, विलास, अव्यावहारिकता एवं विषयासक्तता के परिणाम-स्वरूप प्रायः कम ही सफल होते हैं। देखिए चित्र-२१, आकृति-६।

ऐसे जातक के नेत्र विस्तृत एवं विशाल तो हो सकते हैं, किन्तु उनमें चंचल गति, तीव्र मात्रा या सन्देश दृष्टि आदि में से एक या एक से अधिक दुर्गुण होते ही हैं। ये लक्षण उनकी प्रगति में विशेष बाधक होते हैं। यदि ये बातें न हों तथा उनके नेत्र सम, श्वेत तथा स्निग्ध हों तो जातक के जीवन में सफलता के चिह्न अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। विशेष रूप से ऐसी भौंहों के साथ अति चंचल, कटाक्षपूर्ण तथा हीन नेत्र स्त्रियों के लिए अधिक अशुभ माने जाते हैं।

उल्टे चुरुट के समतुल्य दृष्टिगोचर होने वाली भौंहें, जातक में कार्य-क्षमता, तीव्र विश्लेषण शक्ति, अहं, दम्भ, स्वच्छन्दता, उग्रता, उपेक्षा तथा अनुदारता आदि की मनोवृत्ति को स्पष्ट करती हैं। चित्र-२१, आकृति-७।

ऐसे जातक के नेत्र यदि ऊर्ध्वगत हों तो उसके उपरोक्त दुर्गुणों में न्यूनता, सम हों तो यथावत् स्थिति तथा अधोगत हों तो उक्त गुणों में कमी होने की अधिक सम्भावना रहती है। प्रायः ऐसे व्यक्तियों की दृष्टि केन्द्रित, स्थिर तथा तीव्र होती है। ऐसे लोग प्राच्य विद्याशास्त्री, पुरातत्त्ववेत्ता, इतिहासज्ञ तथा गणनाप्रिय आदि हो सकते हैं।

अन्दर की ओर निम्नगत तथा बाहर की ओर अत्यधिक ऊँची तथा नुकीली भौंहें न्यून अनुभूति, अविकसित बुद्धि, अस्थिरता, उच्छृंखलता एवं उद्दण्डता की द्योतक होती हैं। चित्र-२२, आकृति-८।

यदि इस प्रकार के लोगों के नेत्र सम, श्वेत तथा स्निग्ध हों तो जातक में कुछ सन्तुलन आ जाता है, किन्तु यदि अधोगत, पीतवर्ण, रक्तिम आभा तथा छोटी पुतलियाँ हों तो वे पराश्रयी, कुटिल, लम्पट, निन्दक, भ्रमित, मलिन, दुर्बुद्धि, मद्यप, विषयी, भ्रष्ट, क्लेषी, दुस्साहसी तथा समृद्धहीन आदि में से कुछ दुर्गुणों से युक्त होते हैं। ऐसी स्त्री जातक भी प्रायः द्वेषी, झगड़ालू, चरित्रहीन, सन्ततिहीन हो सकती हैं।

यदि ऐसे व्यक्तियों के नेत्र भी दुर्भाग्य से गोल, उभरे हुए, मलिन एवं चंचल हों तो मूर्ख प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करते हैं किन्तु लम्बी, सम, स्निग्ध एवं श्वेत आँखें उनकी वास्तविक मूर्खता को न्यून कर, उनके हास्य, व्यंग्य एवं मूर्खतापूर्ण नाटकीय अभिनय की सूचक होती हैं। ऐसे जातक अपने निजी जीवन में चतुर, स्वार्थी, कृपण, सीमित एवं निपुण होते हैं, किन्तु बाह्य जीवन में अपने को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि लोग उनकी क्रियाओं से अपना मनोरंजन कर सकें।

पक्ष्म (बरौनी)

इसी सन्दर्भ में पक्ष्म (बरौनी) अर्थात् पलकों के बालों के विषय में भी संक्षिप्त चर्चा करना अनुचित न होगा। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार यदि बरौनी के बाल घने, पतले एवं काले हों तो जातक में नेत्र सुरक्षा क्षमता, दीर्घायु, तीव्र दृष्टि एवं वर्गीकरण शक्ति का अच्छा विकास होता है। इसके विपरीत छितरी हुई, पीली, भूरी, मोटे केशयुक्त या केशविहीन बरौनी निम्न विचारधारा, कुदृष्टि, असमृद्धि, हीन पुरुषत्व एवं तामसी वृत्ति आदि से युक्त स्वभाव एवं चरित्र को अभिव्यक्त करती हैं।

कर्ण (कान)

मुख मण्डल के दोनों ओर कनपटी के पास जो दो अटपटे से हिस्से दिखलाई पड़ते हैं, इन्हें संस्कृत में कर्ण, हिन्दी में कान तथा विज्ञान की भाषा में पिन्ना, बाह्यकर्ण या बाहरी कुण्डली कहते हैं।

जार्जिया के नाड़ी-विशेषज्ञ श्री वारलाम क्विर्चिश्विली का अपने परीक्षणों के आधार पर कहना है कि—"बाह्य कर्ण शरीर का दर्पण कहा जा सकता है।"

कान की आन्तरिक रचना एक चौड़ी ट्यूब के आकार के समान होती है। यह ट्यूब दो भागों में क्रमशः मध्य कर्ण एवं अन्तः कर्ण के नाम से सम्बोधित की जाती है। मध्य कर्ण क्रमशः इनकस, मैलियस एवं स्टेपिज नामक तीन अस्थिमय संरचनाओं से मिलकर बनता है। यह बाह्य कर्ण को आन्तरिक कर्ण से सम्बद्ध करता है। दूसरी ओर आन्तरिक कर्ण एक जटिल संरचना है जिसका प्रमुख अवयव मैम्ब्रेनस लेबिरिन्थ के नाम से पुकारा जाता है। यह तीन अर्धचन्द्राकृति नलियों से मिलकर बनता है। इससे सम्बद्ध मस्तिष्क नाड़ियाँ कर्णेन्द्रिय द्वारा ग्रहण ध्वनि संकेतों को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं। ध्वनि ग्रहण क्रिया का प्रथम अंग बाह्य कर्ण होता है, जिसकी बाह्य स्थिति एवं आकार-प्रकार का मानव की श्रवण क्षमता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। चित्र-२२।

बाह्य कर्ण के स्वरूप एवं स्थिति का कर्णछिद्र, ग्रन्थियों एवं नाड़ी-तन्तुओं पर अत्यधिक प्रभाव होता है, जो मानव स्वभाव एवं चरित्र के निर्धारकों में से प्रमुख होते हैं। इसी एक आधारभूत तथ्य पर सामुद्रिक शास्त्र में कान के बाहरी आकार-प्रकार एवं स्थिति के अनुरूप जातक के शुभाशुभ लक्षणों का अनुमान किया जाता है। यहाँ हम मानव के बाह्य कर्ण लक्षणों का ही अध्ययन करेंगे।

कर्णस्थिति—चेहरे पर कान की सामान्यतः तीन प्रकार की स्थितियाँ होती हैं—प्रथम सामान्य, द्वितीय ऊर्ध्वगत एवं तृतीय निम्नगत। उपरोक्त तीनों प्रकार की स्थितियों को कर्ण छिद्र की स्थिति से परखना चाहिए। इस हेतु देखिए अनूक प्रकरण चित्र क्रमांक-१, आकृति-अ। इसके अनुसार यदि नेत्र, ठोड़ी तथा कान की पपड़ी को मिलाते हुए एक त्रिभुज अ ब स खींचा जाय तो वह समत्रिबाहु त्रिभुज होगा। अब यदि कर्ण छिद्र अधिक ऊपर या नीचे हों तो कान की पपड़ी भी सामान्यतया ऊँची या नीची हो जायेगी और इस प्रकार उक्त त्रिभुज की भुजाओं में समता की अपेक्षा विषमता पैदा हो जायेगी। यहाँ उक्त तथ्य कान की सामान्य स्थिति के आधार पर रखा गया है, अतः यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यदि कान का ऊपरी भाग कुण्डली एवं निम्न भाग पपड़ी असामान्य हो तो छिद्र सामान्य होते हुए भी त्रिभुज में अन्तर पड़ सकता है। यदि कर्ण छिद्र सामान्य स्थान

पर होगा तो कान की पपड़ी से युक्त त्रिभुज समत्रिबाहु बनेगा तथा इसके विपरीत यदि अधिक ऊर्ध्व या निम्न होगा तो त्रिभुज विषमबाहु होगा।

अतः सामान्य कर्ण छिद्र की स्थिति से जातक के स्वभाव एवं चरित्र में सत्यनिष्ठा, स्नेह प्रवृत्ति, उच्च कार्यक्षमता, कर्मठता, विश्वास एवं उदारता, विवेक तथा धैर्य के गुणों का विकास होना सम्भव होता है। ऐसे जातक प्रायः किसी बात को सुनकर विश्वास नहीं करते अपितु उसके मूल में पहुंचकर पूरा पता चलाते हैं। उन्हें कोई शीघ्र ही गुमराह नहीं कर सकता, क्योंकि वे कान के कच्चे नहीं होते। ऐसे कानों का परीक्षण करने का सरल उपाय यह है कि यदि नेत्रों के किनारों पर मिलती हुई रेखा क ख को बाहर की ओर अधिक बढ़ा दिया जाय तो कान का ऊपरी भाग उसका स्पर्श करेगा। कभी-कभी यह भाग उक्त रेखा से कुछ ऊपर भी निकल सकता है।

यदि कान की स्थिति उर्ध्वगत अर्थात् ऊपर मस्तिष्क की ओर अधिक ऊँची उठी हुई हो तो ऐसे व्यक्तियों में लज्जा, शर्म, संकोच, एकान्तप्रियता, हृदय दौर्बल्यता, न्यूनता एवं नारीसुलभ गुणों आदि की प्रवृत्तियों में से एक या अधिक गुणावगुण हो सकते हैं। चित्र-२२, आकृति-८।

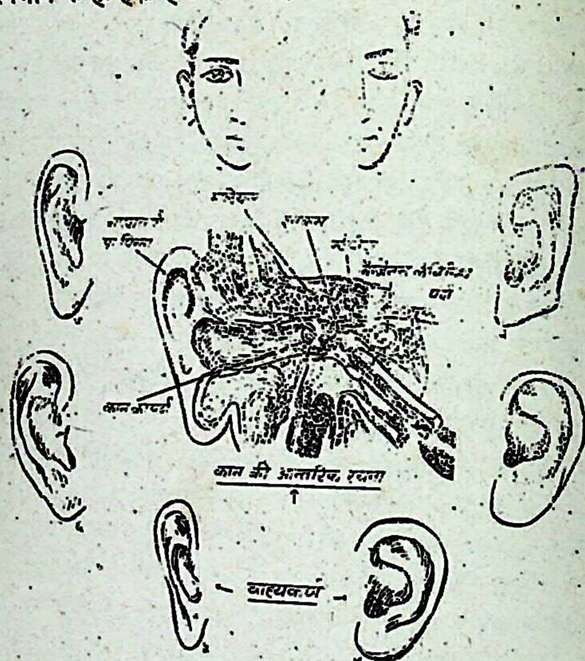
इसके विपरीत यदि कान की बाह्य स्थिति निम्न हो अर्थात् कान ग्रीवा की ओर अधिक नीचे हों एवं नेत्र रेखा से निम्न स्थिति दृष्टिगोचर होती हो तो ऐसे जातक में सतर्कता, सावधानी, शंकाशीलता, स्वकेन्द्रीयता, मौन प्रवृत्ति एवं अव्यावहारिकता आदि के दर्शन होते हैं। चित्र-२२, आकृति-१।

कर्ण की स्थिति के पश्चात् अब हम उनके आकार-प्रकार के अनुसार उनके लक्षणों को देखेंगे। यदा-कदा कुछ लोगों के ऐसे बाह्य कर्ण भी देखने को मिलते हैं जो वर्गाकार-से प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के कान वाले जातक में विनोदप्रियता, व्यावहारिकता, क्रमबद्धता, विचारशीलता एवं निपुणता आदि गुण होते हैं। चित्र-२२, आकृति-२।

यदि ऐसे कानों के साथ अनूक या आकृति भी वर्गाकार हो तो जातक कट्टर भौतिकतावादी, भोगी, स्वार्थी, विलासी, कृपण एवं प्रत्येक बात में फूंक-फूंक कर कदम रखने वाले होता है।

यदि बाह्य कर्ण वर्तुल, स्निग्ध, स्वच्छ एवं सामान्य रक्तिम हों तो ऐसे व्यक्ति में भावुकता, उदारता, कलाप्रेम, चंचलता एवं अक्रमबद्धता के गुणा-

वगुण होते हैं। प्रायः ऐसे लोग मनमौजी, विचरणप्रिय, निरुद्देश्य एवं अफला-तून स्वभाव के ही होते हैं। चित्र-२२, आकृति-३।



चित्र क्रमांक-२२

यदि ऐसे जातक का चेहरा भी गोलाकृति हो तो उसमें उपरोक्त गुणा-वगुणों के अतिरिक्त एकान्त प्रेम, वासनात्मकता, यौन आकर्षण एव निराशा का विकास होना सम्भव है।

यदि कानों की चौड़ाई सामान्य से अधिक दिखलाई पड़ती हो तो व्यक्ति में तीव्र श्रवण शक्ति, दम्भ, अवसरवादिता, अनुदारता, शंकाशीलता, उत्तेजना एवं अविश्वस्तता आदि का होना सम्भावित रहता है। चित्र-२२; आकृति-४।

यदि ऐसे व्यक्तियों की नासिका फैली हुई, मध्य से चपटी या वृहत कोणाकार हो तो उनमें उपरोक्त तत्त्वों में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है; किन्तु

यदि नाक सामान्य हो तो उक्त बातों में सन्तुलन स्थापित करती है।

यदि कानों की चौड़ाई सामान्य से अधिक छोटी हो तो ऐसे व्यक्तियों में साधारण बुद्धि, न्यून चातुर्य, दूसरों की बातों से शीघ्र गुमराह हो जाने का स्वभाव, चंचलता, निम्न विचारधारा एवं अन्धविश्वास आदि की प्रवृत्ति होती है। यदि कान मध्य भाग में कुछ दबे हुए-से प्रतीत हों तो ऐसे व्यक्ति झूठ, चोरी, उचक्कापन, उद्दण्डता एवं अपराधी मनोवृत्ति के साथ यातना-पूर्ण जीवन के परिचायक होते हैं। चित्र-२२, आकृति-५।

यदि कान की आकृति सामान्य लम्बाई एवं चौड़ाई से स्पष्ट दिखलाई पड़ती हो तो ऐसे जातक में विकसित बुद्धि, विचारशीलता, कर्मठता, परि-श्रमप्रियता, व्यावहारिकता, समय की पहचान, नियमबद्धता एवं विश्व-स्तता आदि गुण होते हैं। चित्र-२२, आकृति-६।

यदि ऐसे कान सामान्य स्थिति से ऊर्ध्वगत हों तो जातक में संकोच, हिंसक, भीरुता एवं साहस की न्यूनता होगी एवं यदि कान की स्थिति निम्न-गत हो तो वे सतर्क, मौन, एकान्तप्रिय एवं नियोजित होंगे।

यदि कानों की चौड़ाई सामान्य से अधिक लम्बी दिखलाई पड़ती हो तो ऐसे लोग, सुख, समृद्ध, ऐश्वर्य, यश, ज्ञान, वाक्चातुर्य, स्वाभिमान, नेतृत्व-क्षमता, कूटनीति एवं हठी स्वभाव से युक्त होते हैं। चित्र-२२, आकृति-७।

यदि इस प्रकार के कानों के साथ नासिका भी दीर्घ, नुकीली एवं न्यून-कोणाकार हो तो जातक में उपरोक्त गुणों की वृद्धि करती है, किन्तु यदि सामान्य से छोटी, मध्य में दबी हुई या वक्र हो तो जातक के उपरोक्त गुणों को तामसिक प्रवृत्ति की ओर मोड़ देती है।

इनके अतिरिक्त सामान्य से छोटे कान चातुर्यशक्ति, पद, अधिकार, ऐश्वर्य एवं प्रताप के द्योतक होते हैं।

यदि बाह्य कर्ण पर सघन केश राशि हो तो वह इस बात की परिचायक होती है कि जातक धैर्य, शान्ति, समृद्धि, सम्पत्ति, भोग एवं विलास से युक्त है; किन्तु यदि यह केश समूह मध्य कर्ण हो तो जातक अपनी सम्पत्ति को दुश्चरित्रता के कारण मिट्टी में मिला सकता है।

कान की चमड़ी मोटी, स्थूल एवं कठोर हो तो ऐसे जातक कट्टर भौति-कतावादी, स्वार्थी, छली, अविश्वस्त एवं हानिकारक होते हैं किन्तु यदि वह

पतली, मृदु एवं स्निग्ध हो तो जातक में सतर्कता, चातुर्य, स्नेह एवं मिलन-सारी प्रवृत्ति होगी।

कान चाहे किसी प्रकार के हों लेकिन यदि पीछे की ओर चेहरे से सटे हुए या चिपके हुए हों तो जातक के स्वभाव में लम्पटता, धूर्तता, कपटीपन, अविश्वस्तता, सन्देह, अवसरवादिता एवं भ्रष्टाचारिता के दुर्गुणों का अधिक विकास होता है।

यदि बाह्य कर्ण किसी स्थान पर कोणिक हों तो ऐसे जातक में व्याव-सायिक बुद्धि, वाक्पटुता, नाटकीयता, धूर्तता, दलाली, रंग बदलने की आदत, आर्थिक दृष्टिकोण, मीठी वाणी एवं चपलता के गुण होना स्वाभाविक हैं।

कर्णाकृति के सम्पूर्ण आकार-प्रकार एवं स्थिति के अध्ययन के पश्चात् सूक्ष्म में जाने हेतु प्रमुख रूप से उसके तीनों ही क्षेत्रों का परीक्षण करना चाहिए। क्षेत्र विभाजन इस प्रकार है।

कुण्डली क्षेत्र—बाह्य कर्ण के ऊपरी घुमावदार भाग को कुण्डली क्षेत्र के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह क्षेत्र मानव की मानसिक स्थिति, बुद्धि-विकास, ज्ञानार्जन एवं सात्विक गुणों का परिचायक होता है। यदि उपरोक्त क्षेत्र वर्तुल, स्निग्ध, रक्तिम, सामान्य मांसल एवं आकर्षक हो तो जातक के उत्तम स्वास्थ्य, तीव्र बुद्धि, उदार स्वभाव, मृदुभाषी, दयावान, अध्ययन, मनन एवं चिन्तनप्रियता तथा सतोगुणी होने की सूचना देता है। इसके विपरीत वक्र, शुष्क, मलिन, अमांसल एवं भद्दा कुण्डली क्षेत्र उद्दण्डता, नीचता, स्वार्थ, असहनशीलता एवं हीनता का द्योतक होता है।

छिद्र क्षेत्र—कान का मध्य भाग जो कुण्डली के क्षेत्र के नीचे तथा ध्वनि ग्रहण छेद के आस-पास होता है, छिद्र क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। यह क्षेत्र मनुष्य के लक्षण एवं उद्देश्य आदि की प्रवृत्ति का प्रतीक होता है। उक्त क्षेत्र का सामान्य, सुन्दर एवं छिद्र स्थान से बाहर पिन्ना की ओर उत्तम उतार-चढ़ाव इस बात को स्पष्ट करता है कि जातक के जीवन का लक्ष्य उच्च है तथा वह उसकी प्राप्ति हेतु प्रत्येक परिस्थिति में धैर्य, गम्भीरता एवं विचारपूर्वक योजनाबद्ध रूप से आगे बढ़ेगा तथा अपने उद्देश्य में सफल भी होगा। इसके अतिरिक्त एकदम सपाट या गड्ढों से युक्त छिद्र क्षेत्र अशुभ होता है। ऐसे जातक अविवेकी, जल्दबाज या निरा-

शात्मक प्रवृत्ति के कारण अपने लक्ष्य की प्राप्ति में प्रायः सफल होने से वंचित रह जाते हैं अथवा केवल आर्थिक सफलता ही प्राप्त कर पाते हैं।

पपड़ी क्षेत्र—यह कान का अन्तिम भाग होता है जो प्रायः नीचे की ओर लटकता रहता है। इसे पपड़ी के अतिरिक्त लोर या लुरकी भी कहते हैं, जिसमें अक्सर आभूषण पहने जाते हैं। विशेषकर कर्णफूल इसी में पहना जाता है। इस क्षेत्र से जातक की जैविक अर्थात् जीवन शक्ति, क्षुधा तथा यौन-वृत्तियों का पता चलता है। मृदु, कोमल, सामान्य मांसल, गोल, रक्तिम तथा असंयुक्त पपड़ी या लुरकी वाले जातक में सामान्य स्वास्थ्य, उच्च जीवनी शक्ति, मितभोजी एवं यम, नियम तथा संयम आदि के गुण होते हैं। वे आहार-विहार के सम्बन्ध में क्रमबद्ध, सन्तुलित एवं नियमानुसार होते हैं। यौन-आकर्षण उनमें होता अवश्य है, किन्तु पैशाचिक नहीं। वे सौन्दर्य के प्रेमी होते हैं, किन्तु उसे नष्ट करने के नहीं। उनमें अक्सर यह धारणा पाई जाती है कि सौन्दर्य देखने की वस्तु है, सच्चे आनन्द का मार्ग है तथा कल्याण का माध्यम है। इसके विपरीत मोटी, अति लम्बी (स्वाभाविक रूप से, आभूषण के भार से नहीं) कोणिक एवं विकृत पपड़ी लम्पटता, चंचलता, पैशाचिकता, हृदय या वायुरोग, वासनात्मकता, बहुभोजीपन एवं हीन जैविक गुणों की द्योतक होती है।

ललाट (लिलार)

भौहों के स्थान से लेकर सिर के केश प्रारम्भ होने तक तथा दायें-बायें एक कनपटी से दूसरी कनपटी तक के क्षेत्र को हिन्दी में लिलार या ललाट एवं अंग्रेजी में Forehead के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ललाट क्षेत्र को सामुद्रिक साहित्य में अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। ललाट की स्थिति तथा आकार-प्रकार से बहुत कुछ अंशों तक यह

स्पष्ट हो जाता है कि तत्सम्बन्धी व्यक्ति के मस्तिष्क की स्थिति कसी है? जिसके आधार पर ही उसका मानसिक विकास, कार्यक्षमता, स्वभाव तथा चरित्र आदि निर्भर करता है। अतः ललाट के परीक्षण से मानव व्यक्तित्व का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

ललाट अध्ययन के अन्तर्गत सर्वप्रथम हम उसके विस्तार क्षेत्र को लेंगे। यह तो प्रायः सभी जानते हैं कि विभिन्न व्यक्तियों के सिर के बाल प्रारम्भ होने के भिन्न-भिन्न स्थान होते हैं। किसी के केश बहुत आगे से प्रारम्भ हो जाते हैं तो किसी के बहुत पीछे जाकर। ललाट की ऊँचाई बालों के प्रारम्भ स्थान के अनुसार कम या अधिक हो जाती है। दूसरी ओर यह भी माना जाता है कि मानव चेहरे की सम्मुख अस्थि ऊपर जाकर जहाँ पीछे की ओर घूमती है वहाँ से नेत्रों के ऊपर तक का भाग ललाट मानना चाहिए।



चित्र क्रमांक-२३

अस्तु, यदि केशराशि का प्रारम्भ यथास्थान हुआ हो तब तो कोई प्रश्न ही नहीं किन्तु यदि सिर गंजा हो तो अस्थि के घुमाव को ध्यान में रख कर इस साधारण तथ्य को याद रखना चाहिए कि सामान्यतया ललाट की ऊँचाई सम्पूर्ण चेहरे की लम्बाई का एक तिहाई होती है। चित्र-२३।

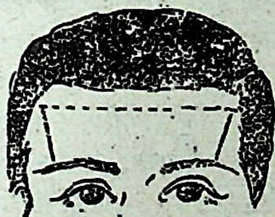
इसी प्रकार ललाट की चौड़ाई का भी अनुमान करना चाहिए। चौड़ाई हेतु यदि आप जातक की कनपटियों के अग्र छोरों को हाथ से दबाकर देखेंगे तो प्रतीत होगा कि जहाँ कनपटियाँ समाप्त होती हैं और ललाट प्रारम्भ होता है वहाँ दोनों किनारों पर अस्थि में कोणात्मकता होगी। वैसे एक सामान्य ललाट की चौड़ाई उसकी ऊँचाई से दुगुनी होती है। चित्र-२३।

ऊँचाई की दृष्टि से एक ऊँचा, लम्बा, उन्नत, स्निग्ध एवं रोमविहीन ललाट गहन अध्ययन, मनन तथा चिन्तन का प्रतीक, गाम्भीर्य, धैर्य तथा शान्ति का सूचक तथा आध्यात्म, दर्शन तथा विज्ञान विषयों में रुचि का द्योतक होता है। चित्र-२३, आकृति-अ। इसके विपरीत नीचा, छोटा, ह्रस्व, सपाट तथा रोमयुक्त ललाट उथलापन, अस्थिरता, चंचलता, तीव्रता, अविकसित बुद्धि, स्वार्थ, वासनात्मकता, धूर्तता एवं मूर्खता आदि का परिचायक होता है। चित्र-२३, आकृति-ब।

उपरोक्त दोनों प्रकार के ललाटों में जहाँ प्रथम प्रकार रचनात्मक प्रवृत्ति का संकेत देता है वहाँ द्वितीय प्रकार विध्वंसात्मक मनोवृत्ति का सूचक होता है।

ऊँचाई के पश्चात् चौड़ाई के अनुसार यदि जातक के ललाट की चौड़ाई सामान्य या उससे कुछ अधिक हो तो उसमें किसी भी विषय के अध्ययन, अनुसन्धान, परीक्षण, विश्लेषण, वर्गीकरण आदि की रुचि, उत्तम स्मरण शक्ति, तर्क की प्रवृत्ति, प्रगतिशीलता, उदारता, दया, सहयोगी स्वभाव तथा विशालहृदयता के गुणों में से कई गुणों का होना सम्भावित होता है। चित्र-२४, आकृति-अ। दूसरी ओर यदि ललाट की चौड़ाई सामान्य से कम हो तो ऐसे जातक में विस्मृति, बात-बात में भूलना, दिखावा, ढोंग, संकुचितता, स्वार्थीपन, अज्ञान, कूपमण्डूकता, असहनशीलता, उत्तेजना एवं अव्यावहा-

अ



ब



चित्र क्रमांक-२४

रिकता आदि में से कई एक दोष होना सम्भव है। चित्र-२४, आकृति-ब। उपरोक्त दोनों भेदों में जहाँ पहला विशाल दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है वहाँ दूसरा संकुचित दृष्टि को इंगित करता है।

यदि ललाट की लम्बाई तथा चौड़ाई दोनों ही पर्याप्त हों तो उसे विस्तृत ललाट के नाम से पुकारा जाता है। ऐसे ललाट के सम्बन्ध में समुद्रेण का कथन है कि—"उन्नत विस्तृत ललाट वाले लोग विद्वान, राजा एवं समृद्ध होते हैं।" इसके विपरीत सामान्य से कम ऊँचा तथा कम चौड़ा ललाट अविस्तृत या संकुचित ललाट के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार का ललाट न्यून, मन्दबुद्धि तथा हीन मनोवृत्ति का सूचक होता है।

विस्तार के पश्चात् ललाट की उन्नत स्थिति देखना भी उपयुक्त होता है। इसकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—समुन्नत, सीधी तथा अनुन्नत।

समुन्नत ललाट उसे कहते हैं जो बाहर की ओर उठा, उभरा या वर्तुल दिखाई पड़ता हो। यदि यह ललाट केवल मध्य से ऊपर के भाग में ही उभरा हुआ न हो अपितु नीचे से ऊपर तक पूर्ण वर्तुल हो तो जातक में तीव्र स्मरण-शक्ति, सूक्ष्म निरीक्षण, विश्लेषण तथा वर्गीकरण की क्षमता का प्रतीक होता है। ऐसे लोग शीघ्र निर्णायक, वचन के पक्के तथा दूरदर्शी होते हैं।

सीधा या सपाट ललाट उसे कहते हैं जो न अन्दर की ओर धँसा हुआ हो और न बाहर की ओर उभरा हुआ ही हो। ऐसे जातक सामान्य बुद्धि, स्मरणशक्ति, मनमौजी, न अधिक सिद्धान्तप्रिय और न अधिक व्यवहारकुशल, अपने काम से काम रखने वाले, सीमित मित्र क्षेत्र वाले तथा स्वान्तःसुखाय प्रवृत्ति के होते हैं।

अनुन्नत ललाट वह होता है जो अन्दर की तरफ धँसा, दबा या बैठा हुआ हो। यदि वह निम्न भाग में भी उठा हुआ नहीं हो तो ऐसे जातक में सामान्य से भी कम बुद्धि, उत्तेजना, आक्रामकता, क्रोध, आवेश, असभ्यता, मूर्खता, उजड्डता, दीर्घ-सूत्रीपन, भ्रष्टाचारिता, अपराधी मनोवृत्ति तथा कलुषित भावनाओं में से अनेक अवगुणों का होना सम्भावित होता है।

इसी प्रकार स्निग्ध, मृदु तथा उत्तम वर्ण से युक्त ललाट उन्नत तथा विस्तृत वर्ग के ललाटों को अधिक शुभदायक तथा निम्न, संकुचित व कठोर ललाटों को कुछ अंश तक सन्तुलित करते हैं। दूसरी ओर शुष्क, रोमयुक्त तथा अमांसल नसों से पूर्ण ललाट उन्नत तथा विस्तृत प्रकार के ललाटों के गुणों को न्यून करते हैं तथा निम्न एवं अविस्तृत ललाटों को और अधिक अशुभता प्रदान करते हैं।

ललाटों की पृष्ठभूमि के अंक में रेखाओं तथा चिन्हों को भी देखना चाहिए। उनका विवरण इस प्रकार है।

सामान्यतया अधिकांश ललाटों पर कुछ रेखाएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। प्रत्येक रेखा के स्थानानुसार उसके नाम तथा गुणों को देखना चाहिए। सामुद्रिकवेत्ताओं ने रेखाओं के गुण, धर्म तथा ललाट पर उनकी स्थिति के अनुसार उन्हें क्रमशः शनि, गुरु, मंगल, बुध, शुक्र, चन्द्र तथा सूर्य रेखा आदि के नाम से सम्बोधित किया है। देखिए चित्र-२५।



चित्र क्रमांक-२५

रेखाओं का अध्ययन करते समय यह देखना चाहिए कि शुभ रेखा सरल; सीधी, तीव्र, स्पष्ट, अभंग, अभ्रष्ट, स्वक्षेत्री, अव्रर्ण तथा असन्तुलित है या नहीं। यदि वह चोड़ी, वक्र, कुण्ठित, अस्पष्ट, भंग, अन्य रेखाओं से भ्रष्ट; अन्यक्षेत्री, अवर्ण तथा असन्तुलित हो तो उसके परिणाम विपरीत या न्यून हो जाते हैं, क्योंकि ऐसी अशुभ रेखा में मानव विद्युत् तथा जीवन शक्ति को गति प्रदान करने की क्षमता नहीं होती।

शनि रेखा—इस रेखा का स्थान ललाट के सबसे ऊपरी भाग में होता है। यह प्रायः अधिक लम्बी नहीं होती अपितु केवल मध्य भाग में स्थित रहती है। उपरोक्त स्थान तथा उसके आजू-बाजू का भाग शनि ग्रह से प्रभावित माना जाता है जो मस्तिष्क की वर्गीकरण व विश्लेषण क्षमता तथा गाम्भीर्य एवं लज्जा वाले भाग का अधिकारी होता है। यदि एक उन्नत ललाट पर शुभ शनि रेखा हो तो ऐसे जातक में एकांगिकता, रहस्यात्मकता,

गम्भीरता, भौतिकता एवं अहं की प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होगी। वे लोग सफल जादूगर, यान्त्रिक, वनस्पतिशास्त्री, रासायनिक, ज्योतिर्विद, तान्त्रिक हो सकते हैं, जो प्रायः अपना जीवन सबसे दूर एकान्त में स्थित अपनी प्रयोगशाला में गुजार देते हैं।

यदि उक्त स्थान अनुन्नत हो या रेखा अशुभ हो तो ऐसे जातक में क्रोध, आवेश, चिड़चिड़ापन, कृपणता, निर्लज्जता, लम्पटता, निराशा, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, नीचता या अपराधी मनोवृत्ति का विकास होना असम्भव नहीं।

गुरु रेखा—शनि रेखा स्थान से कुछ नीचे गुरु रेखा का स्थान होता है। यह रेखा प्रायः शनि रेखा की तुलना में अपेक्षाकृत लम्बी होती है। उक्त स्थान अध्ययन, मनन, चिन्तन, पुरातन प्रेम, इतिहास सम्बन्धी रुचि एवं महत्त्वाकांक्षा आदि का सूचक होता है। यदि एक विकसित ललाट पर दीर्घ, स्पष्ट एवं तीव्र गुरु रेखा हो तो वह आत्मविश्वास, प्रतिनिधित्व, सुरुचि, ज्ञान, सम्मान, यश, अधिकार, आस्तिक एवं प्रमाणबद्ध अभिव्यक्ति की परिचायक होती है। ऐसे लोग अध्यापक, धर्मगुरु, पुरातत्वविद, इतिहासज्ञ, राजनेता, साहित्यकार, आदर्शोन्मुखी एवं उच्च अधिकारी हो सकते हैं।

इसके विपरीत यदि यह स्थान निम्नगत हो या रेखा वक्र, भंग, भ्रष्ट, अति चौड़ी या विवर्ण हो तो जातक का दम्भी, पाखण्डी, नाटकीय, अमहत्त्वाकांक्षी, निराश, आतंकपूर्ण, धूर्त, लक्ष्यहीन, काल्पनिक, विवेकहीन या चरमतावादी होना सम्भव है।

मंगल रेखा—मध्य ललाट मे कुछ ऊपर एवं गुरु रेखा के नीचे मंगल रेखा रहती है। इस रेखा की प्रवृत्ति को समझने से पूर्व, जातक के दोनों कानों के ठीक ऊपर के स्थानों तथा उससे कुछ आगे कनपटियों से ठीक ऊपर के स्थानों को देखना चाहिए। यदि एक सपाट या उन्नत ललाट पर मंगल रेखा अपने शुभ गुणों के साथ हो और जातक के कनपटी से ऊपर के स्थान उन्नत हों तो जातक में साहस, स्वाभिमान, वीरता, धर्म, दूरदर्शिता, विवेक एवं रचनात्मक प्रवृत्ति होगी। ऐसे लोग सफल शासक, सेनानी, राजदूत या पुलिस अधिकारी हो सकते हैं, लेकिन यदि एक निम्न या संकुचित ललाट पर अशुभ गुणों से युक्त मंगल रेखा हो और कानों के ऊपर के स्थान भी उन्नत हों तो जातक में विध्वंसात्मक प्रवृत्ति होगी। ऐसे व्यक्ति समाजद्रोही,

दुस्साहसी, आक्रामक, क्रोधी, विनाशप्रिय तथा तमोगुणी होते हैं।

यदि उत्तम ललाट एवं शुभ रेखा के साथ कानों के ऊपर वाले स्थान पुष्ट हों तो जातक में विध्वंसात्मक प्रवृत्ति के साथ रचनात्मक प्रवृत्ति भी होती है। ऐसे जातक विनाश और निर्माण दोनों ही कर सकते हैं। यदि वे शासक हुए तो शत्रु का विनाश और स्वतः का निर्माण करते हैं, लेकिन यदि अशुभ ललाट के साथ हीन मंगल रेखा हो और कनपटी के ऊपर वाले भाग उन्नत हों तो वे जाने-अनजाने कुछ ऐसे कार्य भी कर बैठते हैं जिससे अन्य का निर्माण एवं स्वयं का विनाश हो सकता है।

बुध रेखा—इस रेखा का स्थान लगभग ललाट मध्य में होता है। यह रेखा प्रायः लम्बी होती है और कभी-कभी तो जातक की दोनों कनपटियों के अग्र किनारों को स्पर्श करती हुई दिखाई पड़ती है। बुध रेखा एवं उसका स्वक्षेत्र स्मरण शक्ति, परिमाणज्ञान, वर्ण विश्लेषण तथा वर्गीकरण प्रवृत्ति का द्योतक होता है। यदि उक्त रेखा तथा स्थान अपने शुभ गुणों से युक्त हों तो जातक में तीव्र स्मरण शक्ति, रंगों को पहचानने की अपूर्व क्षमता, किसी भी विषय के उपयुक्त वर्गीकरण का ज्ञान, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, मस्तिष्क की तीव्रता एवं पारखी प्रकृति होती है। ऐसे लोग सफल व्यापारी, वकील, अभिनेता, डाक्टर या वैज्ञानिक हो सकते हैं। कई प्रसिद्ध हस्तरेखा-विदों के ललाट पर भी इस रेखा को अंकित देखा जाता है।

यदि बुध रेखा या उसका स्वक्षेत्र निम्न प्रकार का हो तो वे लोग बातूनी, वाचाल, चोर, लम्पट, छली या सफेदपोश अपराधी भी हो सकते हैं। प्रायः धूर्त पोंगा पण्डितों में ऐसे लक्षण स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

शुक्र रेखा—इस रेखा का स्थान बुध रेखा के ठीक नीचे केवल मध्य भाग में होता है। यह रेखा प्रायः छोटे आकार की होती है। इसका स्व-क्षेत्र तीव्र स्मरणशक्ति, उत्तम स्वास्थ्य, भ्रमण प्रवृत्ति, अनुसन्धानात्मक रुचि, आकर्षण एवं सम्मोहन का प्रमुख केन्द्र होता है। यदि यह स्थान तथा रेखा पुष्ट हो तो जातक में स्फूर्ति, आशा, उत्साह, स्वच्छन्दप्रियता, उच्च जीवन शक्ति, अनुसन्धानक्षमता, विचरणप्रियता, अध्यवसाय, सौन्दर्य प्रेम एवं गम्भीरता आदि के गुण होते हैं। ऐसे लोग स्वच्छ, साफ तथा श्वेत या हल्के रंग पसन्द करते है। प्रायः सुगन्ध से इनको मोह होता है, अतः अपने

शरीर तथा आसपास के वातावरण को वे इत्र, सैण्ट अथवा धूप आदि से सुगन्धित रखने का प्रयास करते हैं।

यदि यह रेखा विकृत हो या इसका स्वक्षेत्र निम्न हो तथा ग्रीवा के पीछे का ऊपरी भाग अधिक उन्नत हो तो ऐसे जातक यौनप्रिय, वासनात्मक प्रवृत्ति के हो सकते हैं। उनको अपने अध्ययन, मनन तथा चिन्तन में अश्लील यौन-साहित्य एवं विपरीत यौन के नग्न चित्र आदि बड़े पसन्द होते हैं। कभी-कभी ऐसे व्यक्ति स्नायविक रूप से दुर्बल तथा मानसिक विक्षिप्तता आदि से भी पीड़ित हो सकते हैं।

सूर्य रेखा—इस रेखा का स्थान मानव की सीधी आँख की भौंह के ऊपर होता है। इस रेखा का स्वरूप दीर्घ नहीं होता, अपितु लगभग उस नेत्र के क्षेत्र तक ही सीमित रहता है। इसका स्वक्षेत्र प्रतिभा, मौलिकता, सफलता, यश तथा समृद्धि का प्रतीक होता है। यदि यह स्थान एवं रेखा समृद्ध हो तो जातक में अद्भुत सूझबूझ, गणित विषयप्रियता, सम्पादनक्षमता, अनुशासनात्मक स्वभाव एवं प्रभावात्मकता आदि के गुण होते हैं। वे लोग गणितज्ञ, यान्त्रिक, सम्पादक, शासक या नेता हो सकते हैं, जो अपने सिद्धान्तों तथा व्यवहार से अधिकाधिक जनसमुदाय को प्रभावित कर सकते हैं।

यदि यह रेखा भ्रष्ट, खण्डित, वक्र या विकृत हो अथवा इसका स्वक्षेत्र निम्न हो तो जातक में हठवादिता, निरंकुशता, चरमता, आक्रोश, उत्तेजना एवं अस्थिरता आदि दुर्गुण उत्पन्न हो सकते हैं, परिणामस्वरूप वे श्रम और संघर्ष के शिकार होकर अन्धकार में पड़े रह जाते हैं तथा उनके प्रयासों को यश नहीं मिल पाता।

चन्द्र रेखा—बायें नेत्र के ऊपर का क्षेत्र इस रेखा का मुख्य स्थान होता है। यदि इसका स्वक्षेत्र उन्नत हो तथा यह रेखा सरल, सीधी, स्पष्ट, तीव्र, सन्तुलित व स्वक्षेत्र पर ही स्थित हो तो व्यक्ति में कलाप्रेम, आत्मचेतना, एकान्तवास, विकसित बुद्धि एवं कल्पना की प्रखरता होती है। ऐसे जातक कलाकार, कवि, लेखक तथा दार्शनिक हो सकते हैं। इनकी कलाकृति एवं साहित्य में कोमल भावना, प्रणय, कल्पना, भावुकता, स्वप्न, संवेदन, सौन्दर्य तथा शृंगार आदि होते हैं। कभी-कभी ऐसी रेखा वाले जातक आध्यात्मप्रिय, सिद्ध एवं त्रिकालज्ञ भी देखे जाते हैं, जिनमें एक अद्भुत

दूरानुभूति या परानुभूति का ईश्वरीय गुण होता है।

यदि इस रेखा का स्वक्षेत्र या वह स्वयं विकृत हो तो ऐसे व्यक्तियों में अकर्मण्यता, अव्यावहारिकता, अतिस्वप्नशीलता, निराशा, भीरुता, आलस्य, अस्वस्थता, लक्ष्यहीनता एवं आत्मविश्वास में न्यूनता आदि की प्रवृत्तियों का अधिक विकास हो जाता है, परिणामस्वरूप वे जीवन में सफल न होकर इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं।

उपरोक्त रेखाओं में से यदि कोई रेखा अपना स्वक्षेत्र छोड़कर अन्य रेखा क्षेत्र पर आ जाती है तो ऐसी रेखा अपने स्वयं के गुण धर्म को न्यून कर सम्बन्धित क्षेत्र के प्रभावानुसार फल निर्देश करती है। जैसे यदि सूर्य रेखा चन्द्र क्षेत्र पर पहुँचती हो तो जातक के स्वभाव में आशा के साथ निराशा, दृढ़ता के साथ चंचलता एवं व्यावहारिकता के साथ सीमितता आदि को अपनी स्थिति के अनुपात से व्यक्त करती है। कुछ विद्वानों का मत है कि अपने स्वक्षेत्र को छोड़कर किसी अन्य क्षेत्र पर गई हुई ललाट रेखाएँ, क्षेत्रों के आपसी शत्रु, मित्र आदि सम्बन्धों के अनुसार फल देती हैं। उक्त ग्रह रेखा क्षेत्रों के आपसी सम्बन्ध निम्नानुसार हैं।

नाम	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
	चन्द्र	सूर्य	चन्द्र	सूर्य	सूर्य	बुध	बुध
मित्र	गुरु	बुध	गुरु	शुक्र	चन्द्र	शनि	शुक्र
	मंगल	—	सूर्य	—	मंगल	—	—
	बुध	शुक्र	शुक्र	मंगल	शनि	गुरु	गुरु
सम	—	गुरु	शनि	गुरु	—	मंगल	—
	—	मंगल	—	शनि	—	—	—
	—	शनि	—	—	—	—	—
	शनि	—	बुध	चन्द्र	बुध	सूर्य	सूर्य
शत्रु	शुक्र	—	—	—	शुक्र	चन्द्र	चन्द्र
	—	—	—	—	—	—	मंगल

किन्तु उपरोक्त सिद्धान्त कई बार बड़ी जटिल समस्याएं भी उत्पन्न कर देता है, जैसे यदि रवि रेखा अपने क्षेत्र से अपने मित्र क्षेत्र गुरु रेखा पर जाती है तो उसे शुक्र रेखा (शत्रु क्षेत्र), बुध रेखा (सम क्षेत्र), मंगल रेखा (मित्र क्षेत्र) आदि से होकर गुजरना पड़ेगा। ऐसी परिस्थिति में जातक के स्वभाव एवं चरित्र में क्या-क्या गुणावगुण होंगे इसका निर्धारण करना कठिन है। अतएव प्रथम सिद्धान्त को ही अधिक मान्यता देनी पड़ेगी।

ललाट रेखा एवं सामान्य आयु-अनुमान

सामुद्रिक वेत्ताओं ने ललाट की रेखाओं से स्थूल आयुष्य की कल्पना इस प्रकार की है। इस सिद्धान्त से मोटे रूप में जातक की आयु का निर्धारण करते समय ललाट की स्थिति, आकार-प्रकार, वर्ण तथा स्निग्धता को बराबर ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि शुभ ललाट लगभग प्रत्येक रेखा में २५ प्रतिशत आयु की वृद्धि करता है तथा अशुभ ललाट उतने ही प्रतिशत आयु का ह्रास करता है।

ललाट पर यदि कोई रेखा न हो तो जातक को २५ तथा ४० वर्ष की आयु में मारकेश पीड़ा देता है, किन्तु यदि ललाट शुभ हो तो जातक ९० वर्ष तक की दीर्घायु का अधिकारी होता है।

यदि ललाट पर केवल एक दीर्घ, सुन्दर तथा सरल रेखा हो तो शुभ ललाट की स्थिति में दीर्घायु, साधारण ललाट की स्थिति में मध्यायु तथा अतिनिम्न ललाट की स्थिति में अल्पायु प्राप्त होती है।

यदि ललाट पर दो पूर्ण, अखण्ड तथा शुभ गुणों से युक्त रेखाएँ हों तो जातक सामान्य ललाट की स्थिति में भी ६० वर्ष की आयु पाता है तथा यदि ललाट उन्नत हो तो ७५ वर्ष तक जीवन भोगता है।

यदि सामान्य ललाट पर तीन शुभ रेखाएँ हों तो ऐसे जातक भी जीवन के ७५ वसन्त देखते हैं, किन्तु उच्च ललाट इनको दीर्घायुकारक हो जाता है और वे ९५ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं।

यदि निम्न ललाट पर भी शुभ गुणों से युक्त चार रेखाएँ हों तो जातक को ७५ वर्ष की आयु प्रदान करती हैं, पर यदि उन्नत हों तो शतायु होना भी असम्भव नहीं होता।

यदि सामान्य ललाट पर पाँच उत्तम रेखाएँ हों तो ऐसे जातक शतायु होते हैं। यही रेखाएँ निम्न ललाट पर ७५ तथा उन्नत ललाट पर अति दीर्घायु होने की द्योतक होती हैं।

पाँच से अधिक रेखाओं वाले ललाट यदि उन्नत हों तो मध्यायु एवं निम्न श्रेणी के हों तो अल्पायु होते हैं।

यदि ललाट की मध्य से ऊपर वाली रेखाओं में से कोई रेखा केश के उद्‌गम स्थान का स्पर्श कर रही हो तो ऐसे जातक ८० वर्ष की आयु के अधिकारी समझे जाते हैं।

यदि किन्हीं दो रेखाओं के किनारे आपस में एक-दूसरे का स्पर्श कर रहे हों तो आयु का अनुमान ६० वर्ष का माना गया है, किन्तु यदि वे एक-दूसरे को काटते हों तो जातक अल्पायु को प्राप्त होता है।

ललाट रेखाओं पर तिल का प्रभाव

शनि रेखा के आदि में एक काला तिल कृषिकर्म, मध्य में विलास तथा अन्त में यातना का प्रतीक होता है।

गुरु रेखा के आरम्भ में एक तिल भाग्योदय, बीच में व्यभिचार तथा अन्त में दम्भ या मूर्खता का द्योतक होता है।

मंगल रेखा के आरम्भ में एक तिल साहस, मध्य में हठ एवं अन्त में नीचता का संकेत देता है।

बुध रेखा पर काला तिल आरम्भ में चातुर्य, बीच में अज्ञान एवं अन्त में विवाद का सूचक होता है।

शुक्र रेखा के आदि स्थान पर एक काला तिल यौन आकर्षण, मध्य में अति वासना तथा अन्त में पति या पत्नी से कष्ट का परिचायक होता है।

सूर्य रेखा के प्रारम्भ में एक काला तिल यश, बीच में क्रोध तथा अन्त में इन्द्रिय लोलुपता का द्योतक होता है।

चन्द्र रेखा के शुरू में काला तिल कल्पना, मध्य में व्यभिचार तथा अन्त में अपयश का प्रतीक होता है।

ललाट के अन्य चिह्न

त्रिशूल—यदि भ्रू मध्य स्थान पर त्रिशूल का चिह्न हो तो जातक को

दैहिक, दैविक तथा भौतिक कष्ट प्रायः कम देखने में आते हैं और ऐसे लोग अधिकारी, अनुशासनप्रिय, सतर्क, कूटनीतिज्ञ, दूरदर्शक, छली तथा स्वाभिमानी होते हैं। त्रिशूल सीधा खड़ा हो तो उपरोक्त फल सम्भावित होता है, किन्तु यह उल्टा हो तो विभिन्न प्रकार के कष्टों का सूचक होता है।

स्वास्तिक—ललाट के किसी भी स्थान पर स्वस्तिक (卐) चिन्ह हो तो जीवन में गुरुपद, सौम्यता, धैर्य, उच्चविचारधारा, सहनशीलता, अध्ययनप्रियता एवं मंगल कार्यों में रुचि का द्योतक होता है। ऐसे जातक अध्यापक, धर्मगुरु, पुरोहित, ज्योतिषी, हस्तरेखाविद् या महात्मा आदि हो सकते हैं।

वृत्त—ललाट पर यह चिह्न प्रायः कम ही देखने में आता है, यदि यह हो तो जिस रेखा पर हो उसके या स्वक्षेत्र के अनुसार अपना अशुभ फल देता है, किन्तु यदि सूर्य रेखा या उसके स्वक्षेत्र पर हो तो जातक को यश, सम्मान, आदर तथा दूरदर्शिता ही प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त शनि रेखा या उसके स्वक्षेत्र में वृत्त हो तो आर्थिक हानि, गुरु पर हो तो अहं, मंगल पर हो तो दुस्साहस, बुध पर हो तो अल्प बुद्धि, शुक्र पर हो तो यौन-पिपासा एवं चन्द्र पर हो तो जलघात का परिचायक होता है।

गुणक—इसे क्रॉस भी कहते हैं। यदि यह चिह्न गुरु रेखा या उसके स्वक्षेत्र पर हो तो महत्त्वाकांक्षा, अभिलाषा, आशावादी प्रवृत्ति तथा अध्ययन, मनन एवं चिन्तनप्रियता को प्रकट करता है। अन्य रेखाओं पर यह विपरीत प्रभाव डालता है अर्थात् उस रेखा के गुणविशेष में गतिरोध उत्पन्न कर उसकी शक्ति को क्षीण करता है। गुणक चिन्ह दो स्पष्ट लघु रेखाओं से बनना चाहिए, प्रमुख रेखा से नहीं।

नक्षत्र—यदि दो से अधिक रेखाएँ एक-दूसरे को आपस में काटती हों तो यह चिह्न गुणक न होकर नक्षत्र चिह्न कहलाता है।

चन्द्र पर जल से मृत्यु, सूर्य पर अपयश, शुक्र पर प्रेम में निराशा, बुध पर व्यवसाय में हानि, मंगल पर अति क्रोध, गुरु पर अति दम्भ किन्तु मान, द्रव्य एवं आशा तथा शनि पर सम्पत्तिविनाश का सूचक होता है।

द्वीप—इस चिह्न को यव भी कहते हैं। यह जिस रेखा पर स्थित हो उस रेखा की शक्ति को भागों में विभाजित कर उसको क्षीण करता है, किन्तु यदि यह रेखा से विलग होकर रेखा के क्षेत्र पर हो तो सम्बन्धित क्षेत्र

के अनुसार भारतीय मत से उसके गुणों में वृद्धि करता है। विशेषकर मंगल, सूर्य एवं शनि क्षेत्र पर यह विशेष फल की सम्भावनाओं को व्यक्त करता है।

वर्ग—इसे चतुष्कोण के नाम से भी जाना जाता है। यह रेखा या उसके स्वक्षेत्र की उसके दुर्गुणों से रक्षा करता है तथा गुणों में वृद्धिकारक होता है। ललाट पर यह किसी भी स्थान पर क्यों न हो शुभ, रक्षक तथा सन्तुलन बनाए रखने वाला एवं गुणकारक होता है।

यदि इस चिह्न का वर्ण लाल हो तो अग्नि से रक्षा करता है एवं गुणक या नक्षत्र के आसपास हो तो उससे सम्भावित हानि को सन्तुलित करता है।

जाली—यदि कई खड़ी रेखाओं को कई आड़ी रेखाएँ काटती हों तो उसे ग्रिल, जाली या व्यूह कहते हैं। यह अपने क्षेत्र के अनुसार जातक के स्वभाव में विलक्षणता उत्पन्न करती है। शनि पर दुर्भाग्य, गुरु पर अन्ध-विश्वास, बुध पर लम्पटता, मंगल पर आवेशपूर्ण मृत्यु, चन्द्र पर चिन्ता, शुक्र पर कामुकता, सूर्य पर अपयश आदि प्रवृत्ति की प्रतीक होती है।

द्विजिह्वा—यदि उपरोक्त किसी भी रेखा में दो शाखाएँ हों तो उसे द्विजिह्वा या सर्पजिह्वाकार रेखा कहते हैं। शनि रेखा में उक्त गुण हो तो आर्थिक सम्बल के दो स्रोत, गुरु रेखा में हो तो अनेक विद्याओं का ज्ञाता, मंगल में हो तो साहस और धैर्य की प्रवृत्ति, बुध रेखा में हो तो कूटनीति-ज्ञता, शुक्र रेखा में हो तो एक से अधिक यौन सुख, चन्द्र पर हो तो कई कलाओं में रुचि एवं सूर्य रेखा में हो तो यश और प्रभावकारक होता है।

त्रिभुज—यह चिन्ह किसी भी रेखा या उसके स्वक्षेत्र में हो तो उसके गुणों में न्यूनता एवं अवगुणों में वृद्धिकारक होता है। उदाहरणस्वरूप यदि चिन्ह गुरु पर हो तो चाहे गुरु क्षेत्र या गुरु रेखा उन्नत, सरल, स्निग्ध एवं शुभ हो तो भी ऐसे जातक में दम्भ, असत्य, पाखण्ड, धूर्तता एवं स्वार्थ की भावना का कुछ न कुछ अंश अवश्य देखने को मिल सकता है, लेकिन यदि रेखा या क्षेत्र अशुभ हो और साथ में यह चिन्ह भी पड़ा हो तो वहाँ पर 'करेला और नीम चढ़ा' वाली कहावत को चरितार्थ करता है।

मस्तक (सिर)

ललाट सहित मस्तक के आकार-प्रकार एवं स्थिति से मानव के मस्तिष्क को विकसित, अविकसित, तीव्र, कुण्ठित, कुशाग्र एवं मन्द आदि विभिन्न स्थितियों का बड़ी सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रोफेसर टेलर ने मस्तक-आकार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों को निम्न प्रकार से विभाजित किया है।

मानव मस्तक का ऊपरी भाग नैतिक एवं प्रेरणा क्षेत्र, शिखा स्थान तथा उसके कुछ नीचे का पिछला भाग आकांक्षा तथा संचालन क्षेत्र, बिल्कुल पिछला भाग गार्हस्थ्य एवं सामाजिक क्षेत्र, ललाट का ऊपरी भाग मनन, निम्न भाग सैद्धान्तिक, कान के आसपास का भाग स्वपरीक्षक, कान के ठीक ऊपर का भाग रक्षात्मक तथा मध्य का भाग रचनात्मक, उत्पादक एवं उद्देश्यात्मक क्षेत्र का विशेष रूप से सूचक होता है। आगे देखिए चित्र-२६।

इससे स्थूल रूप से स्पष्ट होता है कि सम्बन्धित व्यक्ति के मस्तिष्क के उपरोक्त अलग-अलग क्षेत्रों में जो क्षेत्र उन्नत, विस्तृत एव विकसित होंगे उनमें उपरोक्त गुणों की प्रवृत्ति होगी तथा इसके विपरीत जो क्षेत्र अनुन्नत, अविस्तृत एवं अविकसित होंगे उनमें उपरोक्त गुणों की न्यूनता होगी। इस बात के विवेचन से इसका पर्याप्त आभास हो सकेगा।

यदि जातक के केश का आरम्भ स्थान ऊँचा हो अर्थात् ललाट की ऊँचाई सामान्य हो तो ऐसे व्यक्ति में उच्च आदर्श, आध्यात्मिक प्रेम, बुद्धि केन्द्रीयकरण शक्ति, स्वाभिमान, उदारता, गम्भीरता एवं विशाल दृष्टिकोण होता है। ऐसे लोग प्रायः अध्यापक, उपदेशक, नेता, अन्वेषक, धर्मगुरु या प्रवर्तक, पैगम्बर या अवतार आदि होते हैं।

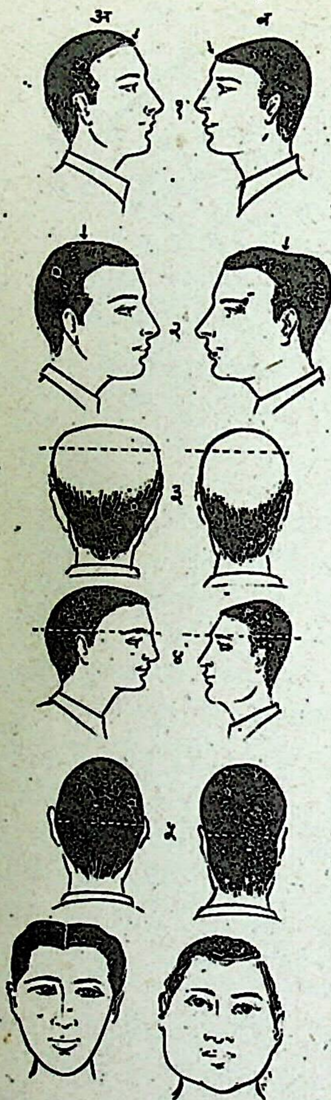
प्रायः वे कम बोलते हैं, किन्तु जब बोलते हैं तो सन्तुलित, स्पष्ट, सार-

चित्र क्रमांक—२६

गर्भित एवं प्रभावोत्पादक वाणी में बोलते हैं। चित्र-२७, आकृति १-अ।

इसके विपरीत कतिपय व्यक्तियों का उपरोक्त मस्तक स्थान निम्न, संकुचित एवं निर्बल होता है। ऐसे जातक में हीन स्मरणशक्ति, चंचलता, स्वार्थीपन, उद्दण्डता, संकुचितता, निम्न मनोवृत्ति, अदूरदर्शिता एवं उच्छृंखलता आदि में से कई दुर्गुण होना सम्भावित होते हैं। ऐसे लोग अपने कार्यों में असफल, अपने क्षेत्र में बदनाम एवं अपने मन में महान् होते हैं। चित्र-२७ आकृति १-ब।

कान की सीध में, मस्तक का मध्य स्थान यदि उन्नत एवं विकसित हो तो ऐसे व्यक्ति नैतिकताप्रिय, आकांक्षी, दृढ़-विचारवान, अनुभूतिपूर्ण, आत्मशक्तियुक्त एवं कर्मठ होते हैं। जीवन का कोई भी उतार-चढ़ाव इन्हें



चित्र क्रमांक-२७

अपने सिद्धान्तों से डिगा नहीं पाता। वे अपने जीवन का सर्वस्व अर्पण कर सकते हैं, किन्तु अनैतिकता को गले नहीं लगा सकते। ऐसे जातक विचारक, दार्शनिक, महर्षि या महात्मा भी हो सकते हैं, किन्तु उसके साथ ही पूर्ण व्यावहारिक होते हैं। चित्र-२७, आकृति २-अ।

इसके विपरीत जिन व्यक्तियों का उपरोक्त मस्तक स्थान निम्न हो वे असत्य, अन्याय तथा अनैतिकता के पुजारी होते हैं। उनके जीवन का लक्ष्य येन-केन-प्रकारेण अपने स्वार्थ की पूर्ति करना होता है। उसमें वे वांछित या अवांछित माध्यम को नहीं देखते। ऐसे जातक ऊपर से भले तथा सभ्य दिखाई पड़ सकते हैं, किन्तु कहीं न कहीं भ्रष्ट कर्मों से उनका सम्बन्ध होना असम्भव नहीं। इसके साथ ही वे मस्तिष्क से दुर्बल तथा शीघ्र ही दूसरे के प्रभाव में आने वाले भी होते हैं। चित्र-२७, आकृति २-ब।

जिन व्यक्तियों का शिखा स्थान के आसपास का मस्तक भाग उन्नत तथा विस्तृत हो वे महत्त्वाकांक्षी, संचालन क्षमता से युक्त, अनुशासनशील, तार्किक, दूरदर्शी, अहंयुक्त तथा सीमित मित्र समुदाय वाले होते हैं।

प्रायः उच्चाधिकारियों तथा धर्मगुरुओं आदि में उक्त लक्षण स्पष्ट देखा जा सकता है। चित्र-२७, आकृति ३-अ।

कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनका उक्त मस्तक स्थान अनुन्नत तथा अविकसित होता है। ऐसे जातक प्रायः आश्रित, सेवक, जल्दबाज, दीर्घ-सूत्री, अकर्मंठ, स्वच्छन्द, दम्भी या हीन मनोवृत्ति के हो सकते हैं। निम्न मध्यम वर्ग, शासकीय सेवकों में यह संख्या लगभग ४५ प्रतिशत होती है। चित्र २७, आकृति ३-ब।

भौंहों के अन्तिम छोर से अर्थात कनपटियों से पार्श्व मस्तक तक आजू-बाजू का भाग, ऊँचाई की तुलना में अधिक चौड़ा, विस्तृत एवं उन्नत हो तो ऐसे व्यक्तियों में अग्रदृष्टि, दूरदर्शिता, आत्मबल, सहजोपलब्धि, अन्तः-प्रेरणा, अन्तर्ज्ञान, सामाजिकता, रक्षात्मकता, उद्देश्यात्मकता एवं उत्तम गार्हस्थ्य जीवन संचालन आदि के एक या अनेक गुण होते हैं। ऐसे लोग सफल भविष्यवक्ता, ज्योतिषी, सामुद्रिक, महात्मा या नेता हो सकते हैं। चित्र-२७, आकृति ४-अ।

इसके विपरीत यदि उपरोक्त मस्तक क्षेत्र संकुचित, अनुन्नत एवं क्षीण हो तो ऐसे व्यक्तियों में अदूरदर्शिता, असामाजिकता, अव्यावहारिकता, अकर्मण्यता, आदि की प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं। ऐसे लोग भविष्य के सम्बन्ध में संदिग्ध एवं वर्तमान में उद्देश्यहीन होते हैं। सामान्यतः ऐसे जातक जीवन के उत्तरार्ध में अपने आपको असफल मानते हैं। चित्र-२७, आकृति ४-ब।

मस्तक का पार्श्व भाग यदि दोनों कानों के मध्य ऊपरी भाग की अपेक्षा-कृत अधिक चौड़ा, विस्तृत एवं उन्नत हो तो जातक में समाज एवं गार्ह-स्थ्य प्रेम, कर्मठता व रक्षात्मकता आदि गुण होते हैं, किन्तु प्रायः वे लोग शीघ्र क्रोधित हो संघर्ष के लिए तत्पर हो जाते हैं। ऐसे जातक सामान्य रूप से पुलिस एवं सेना की सेवाओं की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। चित्र-२७, आकृति ५-अ।

यदि जातक के मस्तक का उपरोक्त क्षेत्र ऊपरी भाग की तुलना में संकुचित, अनुन्नत एवं निर्बल हो तो ऐसे लोगों में स्वयं की अपेक्षाकृत समाज एवं गृहस्थ के प्रति न्यून प्रेम होता है। साथ ही वे ठण्डे स्वभाव एवं मधुरगतिवान भी होते हैं। उन्हें बहुत कम क्रोध आता है और वे भीरुऔर

साहसहीन, आधीन एवं सेवक होते हैं, किन्तु उनमें आज्ञाकारिता, जिज्ञासा एवं सीखने की प्रवृत्ति अधिक होती है। चित्र-२७, आकृति-५-ब।

चेहरे के सामने की ओर से मस्तक का ऊपरी भाग स्पष्ट, चौड़ा, विस्तृत एवं उन्नत हो तो ऐसे जातक में आदर्शप्रियता, विशाल हृदयता, स्वाध्याय-प्रियता, विचारानुभूति एवं रचनात्मक प्रवृत्ति होती है। वे लोग उत्तम विचारक, अन्वेषक, अध्यापक, धर्मगुरु, बुद्धिवादी, साहित्यकार एवं नेता हो सकते हैं। ऐसे जातक अपने क्षेत्र के युगप्रवर्तक बनकर स्थायी ख्याति को प्राप्त करने में भी सफल हो सकते हैं। चित्र-२७, आकृति ६-अ।

इसके विपरीत यदि उपरोक्त स्थान तुलनात्मक रूप से न्यून हो तो जातक में उपरोक्त गुणों की न्यूनता का परिचायक होता है। ऐसे लोग भौतिकतावादी, स्वार्थी, अनुदार, संकुचित हृदय, कल्पनाहीन, असत्याधीन, मन्दबुद्धि तथा भौतिक एवं व्यावसायिक दृष्टि से वे अपने आपको सफल मानते हैं, किन्तु उन्हें लोकप्रियता, विश्वास एवं श्रद्धा प्राप्त नहीं होती। चित्र-२७, आकृति ६-ब।

सूत्र में समन्वय एवं सरलीकरण प्रस्तुत करते हुए भारतीय सामुद्रिक समुद्रण कहता है कि—"कुम्भाकार, गजमस्तक तुल्य या छत्र के समान मस्तक का आकार अध्ययन, मनन एवं चिन्तन, कुशाग्रबुद्धि, विश्लेषणक्षमता, शासन, शक्ति, ऐश्वर्य, सम्पन्नता, स्वास्थ्य एवं सफलता का परिचायक होता है। इसके विपरीत विषम, निम्न एवं संकुचित मस्तक बुद्धिहीन, आवेशी, दरिद्र, नीचसंगत, असफल एवं दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का होता है।"

विभिन्न सामुद्रिकवेत्ताओं के कथन अपने आप में परिपूर्ण हैं। आज का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि करता है।

इस सम्बन्ध में दो जर्मन वैज्ञानिकों श्री फ्रेन्ज जोसफ गाल तथा उनके शिष्य श्री जोहनन कास्पर स्पुरजेम ने अपने ग्रन्थ में पर्याप्त प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थ का एक संस्करण सन् १८१४ में लन्दन से—'दि फिजियोलाजिकल सिस्टम ऑफ डा० गाल एण्ड स्पुरजेम बेस्ड ऑन एन एनाटॉमिक एण्ड फिजीयोलाजिकल एक्जामीनेशन ऑफ द नर्वस सिस्टम एण्ड द ब्रेन इन पर्टिकुलर' के नाम से प्रकाशित हुआ। सेन्ट जर्मन ने अपने ग्रन्थ 'दि स्टडी ऑफ पामिस्ट्री फॉर प्रोफेशनल परपज' में इस सन्दर्भ में विशद

व्याख्या की है। इन विद्वानों के अनुसार मस्तक के विभिन्न क्षेत्रों की स्थिति से निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं।

(१) ग्रीवा के पार्श्व प्रदेश के ऊपर वाले इस स्थल का अत्यधिक पुष्ट एवं सबल होना इसका स्पष्ट संकेत देता है कि जातक में यौन आकर्षण एवं कामवासना का सामान्य से अधिक प्राबल्य है।

(२) यह स्थान पुष्ट एवं उन्नत हो तो इस बात का सूचक होता है कि ऐसे व्यक्तियों में अपने बच्चों के प्रति प्रगाढ़ स्नेह एवं वात्सल्य प्रेम है। वे अपने गार्हस्थ्य धर्म की ओर से प्रायः विमुख नहीं होते।

(३) मस्तक का यह क्षेत्र यदि उन्नत एवं सबल हो तो ऐसे जातक में अपनी जन्मभूमि, मातृभूमि या निवास स्थान के प्रति अत्यधिक प्रेम होता है। वे अपना प्रत्येक कार्य अपने घर में रहकर ही करना पसन्द करते हैं। विचरण और यात्राओं आदि में उनकी रुचि नहीं होती।

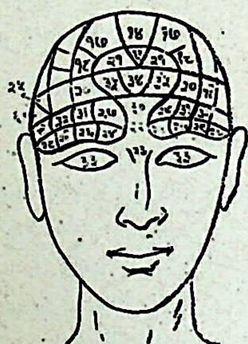
(४) उक्त स्थानों का पुष्ट एवं सबल होना इस तथ्य का परिचायक होता है कि सम्बन्धित व्यक्ति में स्नेह, सहयोग, त्याग एवं उदारता की प्रवृत्ति है। वे अपने प्रयोजनों हेतु अपना सर्वस्व तक बलिदान करने को सदैव तत्पर रहते हैं।

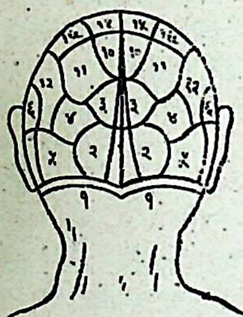
(५) इन स्थानों की पुष्टता एवं उन्नत स्थिति यह इंगित करती है कि हठवादिता, प्रतिशोधात्मक वृत्ति, शीघ्र आवेश एवं अशान्त प्रवृत्ति से जातक ओतप्रोत है। ऐसे व्यक्ति अपनी जिद के कारण कुछ भी भला-बुरा करने में नहीं सकुचाते।

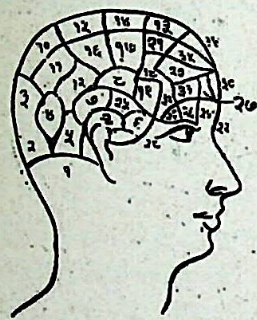
(६) दोनों कानों के ठीक ऊपर के ये स्थान यदि उन्नत एवं सबल हों तो ऐसे जातक में रक्षण के साथ ही ध्वंसात्मक प्रवृत्ति का भी प्राबल्य होता है। वे लोग जिस क्षेत्र में हों, तत्सम्बन्धित विनाश अधिक एवं निर्माण कम करते हैं।

(७) यदि यह दोनों ही स्थल पुष्ट एवं उन्नत हों तो ऐसे व्यक्ति बड़े गोपनीय होते हैं। इन लोगों के मन की बात निकलवाना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य होता है। वे किसी भी व्यवसाय में हों, उसके गोपनीय विभाग के लिए उपयुक्त होते हैं।

(८) यदि जातक के इस क्रमांक के स्थान उन्नत एवं सबल हों तो वे







मस्तक विभाग

चित्र क्रमांक-२८

लोग स्वार्थ, लोभ, स्वामित्व एवं संग्रह आदि प्रवृत्ति के वशीभूत होते हैं। वे अपने जीवन में, अपने अधिकार क्षेत्र में, किसी अन्य का अधिकार या हस्तक्षेप बिल्कुल पसन्द नहीं करते।

(९) इन स्थानों की पुष्टता एवं सबलता इस बात की परिचायक होती है कि सम्बन्धित जातक में निर्माण या सृजन की मनोवृत्ति का प्राबल्य है। ये लोग उत्तम शिल्पी, साहित्यकार, अन्वेषक, यान्त्रिक या निर्माता हो सकते हैं।

(१०) यदि यह स्थल उन्नत एवं पुष्ट हों तो सम्बन्धित व्यक्ति में स्वतन्त्रताप्रेम, सम्मान, स्वाभिमान एवं देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के भाव होते हैं।

(११) यदि मस्तक के यह स्थान पुष्ट और सबल हों तो ऐसे जातक खुशामदपसन्द, आत्मप्रशंसाप्रिय, भावुक एवं कुछ मूर्खतापूर्ण लक्षणों से युक्त होते हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसे जातकों की सच्ची-झूठी प्रशंसा एवं खुशामद करके, उनसे गलत या सही काम आसानी से करवा सकता है।

(१२) इस क्रमांक के स्थान यदि उन्नत एवं पुष्ट हों तो ऐसे व्यक्तियों में शंकाशीलता, हिचक एवं संकोच होता है। उनको प्रायः सभी क्षेत्रों में सन्देह होता है। इस हेतु वे अक्सर पूर्ण सतर्क रहने का प्रयास करते हैं, परिणामस्वरूप

वे कभी दूरदर्शी एवं कभी भ्रमित सिद्ध होते हैं।

(१३) इस स्थान का पुष्ट एवं उन्नत होना इस बात का प्रतीक होता है कि व्यक्ति उदारहृदय, दयालु, परोपकारी एवं हितैषी प्रवृत्तियों से युक्त है। ऐसे जातक अच्छे मार्गदर्शक, सहयोगी एवं मित्र सिद्ध हो सकते हैं।

(१४) यह स्थान श्रद्धा का सबसे बड़ा केन्द्र होता है। यदि यह सबल एवं पुष्ट हो तो ऐसे व्यक्तियों में अपने वयोवृद्धों एवं गुरुजनों, शास्त्रों, नियमों, परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों आदि के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास होता है। वे ईश्वरभक्त एवं धर्मनिष्ठ होते हैं।

(१५) यदि शिखा स्थान के आसपास का यह क्षेत्र उन्नत हो तो जातक में आत्मदृढ़ता, ठोस कर्मठता, नीतिज्ञता, वचनबद्धता एवं दृढ़ संकल्पनिष्ठा आदि के गुण होते हैं। चाणक्य की दृढ़ प्रतिज्ञा इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्मरण रहे, उन्होंने शिखा खोलकर ही अपने लक्ष्य की प्रतिज्ञा की थी।

(१६) यदि मस्तक के यह स्थान उन्नत एवं पुष्ट हों तो सम्बन्धित जातक में जागरूकता, सत्यनिष्ठा, सच्चरित्रता, न्यायप्रियता एवं वैचारिकता आदि गुण होते हैं। वे लोग जीवन में सत्य और न्याय के पक्षपाती होते हैं।

(१७) यदि इस क्रमांक के स्थान पुष्ट और सबल हों तो ऐसे जातक में अपने भविष्य के प्रति आस्था, आशा एवं विश्वास होता है। ऐसे लोग कभी किसी भी विषय के भावी स्वरूप के प्रति हताश या निराश नहीं होते, उस सम्बन्ध में निरन्तर उद्योग करते रहते हैं और अक्सर सफल होते हैं।

(१८) ये स्थान क्रमांक चौदह के पूरक होते हैं अस्तु, यदि ये उन्नत एवं पुष्ट हों तो ऐसे जातक में निश्चित रूप से अपने धर्म, आध्यात्मवाद एवं ईश्वर के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास होता ही है किन्तु यदि क्रमांक चौदह के के साथ ये अत्यधिक उठे हुए हों तो व्यक्ति में अन्धविश्वास की प्रवृत्ति का होना सम्भव होता है।

(१९) यदि व्यक्ति के मस्तक के यह दोनों स्थान उठे हुए तथा पुष्ट हों तो ऐसे लोगों में आदर्श के साथ विशुद्ध कला एवं सौन्दर्यप्रेम होता है; दूसरे शब्दों में वे लोग कला क्षेत्र में भ्रष्टाचार बिल्कुल पसन्द नहीं करते।

(२०) यदि यह स्थान उन्नत और सबल हों तो ऐसे व्यक्तियों में हास्यरस का प्राबल्य होता है। वे लोग प्रायः सदैव खुशमिजाज, प्रसन्न-

मुख, हँसते हुए एवं प्रफुल्लित ही दृष्टिगोचर होते हैं। इनको हँसी, दिल्लगी, मजाक, मसखरेपन एवं हाजिर-जवाबी का विशेष चाव होता है।

(२१) यदि इस क्रमांक के मस्तक स्थान पुष्ट एवं उन्नत हो तो सम्बन्धित जातक में अनुकृति या नकल करने का विशेष गुण होता है। ऐसे व्यक्ति अभिनयकला के क्षेत्र में कामेडियन का रोल अच्छा प्रस्तुत कर सकते हैं; किन्तु साहित्य एवं व्यापार में यही गुण एक दुर्गुण बन जाता है।

(२२) मस्तक का यह स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। यदि यह उन्नत एवं पुष्ट हो तो ऐसे व्यक्ति में अन्वेषण एवं विश्लेषण की अद्वितीय क्षमता होती है। ऐसे लोग अपनी बुद्धि से दूध का दूध और पानी का पानी करने में निपुण होते हैं।

(२३) यह स्थान जातक की दृढ़ स्मरणशक्ति एवं ध्यान केन्द्रीयकरण क्षमता का परिचायक होता है। ललाट का निम्न छोर यदि उन्नत एवं पुष्ट हो तो ऐसे लोग वर्षों पुरानी बातों की याद रखने, व्यक्ति को पहचानने एवं बुद्धि को वस्तु विशेष में केन्द्रित करने में विशेष सफल होते हैं।

(२४) ये दोनों स्थल भी स्मरण शक्ति से सम्बन्धित होते हैं। यदि ये पुष्ट एवं उन्नत हो तो जातक की याददाश्त तेज होती है किन्तु ऐसी स्मरण शक्ति में यह विशेषता होती है कि वह अन्य बातों की अपेक्षाकृत किसी वस्तु की लम्बाई एवं चौड़ाई याद रखने की अधिक क्षमता रखता है।

(२५) यदि मस्तक के यह दोनों भाग उठे हुए एवं सबल हों तो ऐसे जातक में सत्यानुभूति का विशेष गुण होता है। वे लोग बिना देखे, केवल किसी वस्तु का स्पर्श कर या उसे उठाकर ही उसके आकार-प्रकार या भार का सही अनुमान लगा सकते हैं।

(२६) यदि नेत्रों के ऊपर के ये दोनों मस्तक क्षेत्र उन्नत एवं पुष्ट हों तो जातक में रंगों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण की उत्तम शक्ति होती है। सम्भवतः उक्त क्षेत्रों के साथ क्रमांक पच्चीस भी यदि उठे हुए हों तो जातक स्पर्शानुभूति से वर्ण-विभेद करने में सफल हो जाता है।

(२७) इस क्रमांक के उन्नत तथा पुष्ट मस्तक क्षेत्र वाले जातक जन्मजात विचरणप्रिय होते हैं। ऐसे व्यक्ति सदैव विचरण, यात्रा तथा स्थान परिवर्तन करते रहते हैं। इन्हें एक लम्बे समय तक एक स्थान पर रहना

नहीं सुहाता।

(२८) कनपटियों से लगे यह दोनों क्षेत्र यदि उन्नत तथा सबल हों तो ऐसे व्यक्ति में गणित विषय के प्रति अत्यधिक रुचि होती है। प्रायः सफल गणितज्ञ, ज्योतिषी, अर्थशास्त्री तथा वाणिज्य विशेषज्ञ आदि के उक्त स्थान उठे हुए होते हैं।

(२९) यदि मस्तक के ये क्षेत्र उठे हुए व पुष्ट हों तो सम्बन्धित जातक में अनुशासन, सम्पादन तथा नेतृत्व के विशेष गुण होते हैं। ये लोग सफल शासक, सम्पादक या राजनेता हो सकते हैं।

(३०) मस्तक का यह स्थान भी स्मरण शक्ति से ही सम्बन्धित होता है। यदि यह उन्नत तथा पुष्ट हो तो ऐसे जातक में ऐतिहासिक घटनाओं की तिथियाँ तथा समय याद रखने की उत्तम क्षमता होती है। ऐसे व्यक्ति प्रायः पुरातत्त्व या इतिहास विभाग में देखे जा सकते हैं।

(३१) यदि यह दोनों स्थान पुष्ट तथा उठे हुए हों तो ये क्रमांक तीस के पूरक होकर उसके गुणों में और अधिक वृद्धि करते हैं, विशेष कर काल निर्धारण एवं विश्लेषण क्षमता में यह स्थान महत्त्वपूर्ण होता है।

(३२) मस्तक के इस क्रमांक के दोनों स्थानों का सम्बन्ध संगीत कला से होता है। यदि ये उन्नत एवं पुष्ट हों तो सम्बन्धित जातक में संगीत शास्त्र के विभिन्न तत्त्वों के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन के साथ रियाज करने की गम्भीर मनोवृत्ति होती है।

(३३) इसका स्थान नेत्रों में होता है। यदि नेत्र स्थान विस्तृत, उन्नत एवं पुष्ट हो तो वह इस बात का परिचायक होता है कि इसके पार्श्व स्थित मस्तिष्क स्थान विकसित है, जो विभिन्न भाषाओं के अध्ययन की रुचि को स्पष्ट करता है।

(३४) यह स्थान मनुष्य के किसी भी विषय में वर्गीकरण एवं विश्लेषण क्षमता का प्रतीक होता है। ऐसे जातक प्रत्येक क्षेत्र में बाल की खाल उखाड़ कर उनकी तह में पहुँचने का प्रयास करते हैं। उन्हें सामान्यतया बिना गहराई में पहुँचे किसी बात पर विश्वास ही नहीं होता।

(३५) क्रमांक चौंतीस के आजू-बाजू वाले मस्तक क्षेत्र भी विश्लेषण से सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु ये स्थान यदि पुष्ट एवं उन्नत हों तो यह स्पष्ट

करते हैं कि ऐसे जातक की रुचि दर्शन शास्त्र में अधिक होती है। वे अपने विषय की गहराई में तो पैठते हैं, किन्तु इसके साथ ही वे उसका सम्बन्ध रहस्यात्मक विषयों के माध्यम से स्पष्ट करने की प्रवृत्ति रखते हैं।

उपरोक्त सभी विभागों की उन्नत एवं पुष्ट स्थितियों का सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है, जो यह स्पष्ट करते हैं कि जिस क्रमांक का मस्तिष्क क्षेत्र उठा हुआ होगा उसके पार्श्व मस्तिष्क का भी वह क्षेत्र विकसित होगा।

केश (बाल)

मानव शरीर पर बालों का सबसे बड़ा समूह मस्तक पर होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार बाल भी उसी प्रकार के 'टिशू' से बनते हैं, जिनसे मानव के वाह्य चर्म का निर्माण होता है। मनुष्य की खोपड़ी पर 'फोलि-किल्स' (ट्यूब के समान गड्ढों) का एक जाल बिछा होता है जो 'पोपिल्ला' के नाम से सम्बोधित किए जाते हैं। यहीं से बालों की जड़ों को रक्ताहार प्राप्त होता है। इस आहार के साथ ही वाल एंजाइम भी ग्रहण करते हैं जिससे उनका वर्ण सम्बन्धित रहता है। 'मेलानिन' की उचित मात्रा प्राप्त होने से बालों का वर्ण काला एवं पर्याप्त रक्ताहार से उनमें स्निग्धता तथा मोटाई से उनमें मृदुता या कठोरता उत्पन्न होती है। मृदु एवं कठोर बालों में सामान्यतः एक इंच के ४००वें भाग से ५००वें भाग तक की मोटाई का अन्तर होता है। बाल साधारणतया दो माह में एक इंच बढ़ते हैं।

उपरोक्त तथ्यों से स्थूल रूप में यह स्पष्ट हो जाता है कि बालों की स्थिति, वर्ण एवं मोटाई आदि से शरीर के तत्त्वों का पता चलता है। अतः चूंकि मानव स्वभाव, चरित्र एवं कार्यक्षमता आदि शरीर के विभिन्न स्तरों पर निर्भर करते हैं, अतएव यह कहा जा सकता है कि बालों से मानव के व्यक्तित्व का स्थूल अनुमान लगाया जा सकता है।

सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से बालों की स्थिति, आकार, वर्ण, स्निग्धता एवं कंघी, शैली आदि से निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं।

एक रोमकूप या फोलिकिल्स या पोपिल्ला में एक केश या बाल होना

शुभ होता है। इससे बालों को पर्याप्त आहार एवं एंजाइम प्राप्त होता है, वे सन्तुलित रूप से बढ़ते हैं एवं उनका वर्ण लम्बे समय तक एक जैसा रहता है जिससे उन पर नजले का प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत एक रोमकूप में एक से अधिक बालों का होना अशुभ होता है। ऐसे जातक की जीवन शक्ति में कहीं न कहीं, कोई न कोई गतिरोध होता ही है जिसका प्रभाव उसके स्वभाव एवं चरित्र में स्पष्ट देखा जा सकता है। प्राय: ऐसे व्यक्तियों में चिड़चिड़ापन, आवेश, उत्तेजना या आलस्य हो सकता है।

इसी प्रकार एक बाल में एक ही तना होना शुभ होता है। ऐसे बाल अपने आप में उत्तम माने जाते हैं, लेकिन यदि एक बाल में से कई शाखाएँ निकली हुई हों या वे पूरे भागों में फटे हुए हों तो व्यक्ति की शक्ति को क्षीण करते हैं। ऐसे जातकों की जीवन शक्ति दो भागों में विभाजित होती है, जो इस बात की परिचायक होती है कि व्यक्ति में अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उच्च एवं दृढ़ आत्मशक्ति, विश्वास, कर्मठता एवं दृढ़ता नहीं है अर्थात् वह अपने प्रयासों के प्रति केन्द्रित एवं विश्वस्त नहीं है। प्राय: ऐसे लोग दो विचारधाराओं के द्वन्द्व के मध्य गोते खाते रहते हैं और किसी एक अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच पाते, परिणामस्वरूप सफलता से दूर रहते हैं।

भारतीय वातावरण में अधिकांश बाल काले तथा सफेद होते हैं। वर्ण के अनुसार भारत में श्याम वर्ण के बाल मानसिक स्वस्थता, कर्मठता, विश्वास एवं उच्च जीवन शक्ति के परिचायक होते हैं तथा सफेद बाल मानसिक कमजोरी के। पाश्चात्य विद्वान अपने देश, काल एवं वातावरण के अनुसार काले बालों को पाशविक आकर्षण, भूरे बालों को उत्तम स्वभाव, भावुक हृदयता, संवेदनशीलता, काले बालों को गहरी भावुकता तथा अस्थिर प्रकृति एवं श्वेत बालों को मानसिक तनाव का परिचायक मानते हैं।

पतले बाल उत्तम स्वभाव, उदारता, प्रेम, दया, मृदुता, संकोच एवं संवेदनशीलता के प्रतीक होते हैं। ऐसे व्यक्तियों में गहन अनुभूति, कल्पना, भावुकता एवं कोमलता होती है। ये धैर्य, शान्ति, सहनशीलता एवं प्रेम के माध्यम से जीवन गुजारने में विश्वास करते हैं। इसके विपरीत मोटे एवं कड़े बालों वाले लोगों में उत्तम स्वास्थ्य एवं उच्च जीवन शक्ति होती है।

वे आकांक्षी, उत्तेजक, साहसी एवं कभी-कभी क्रूर स्वभाव के हो सकते हैं।

सीधे एवं सरल बाल आत्मसंरक्षण, सरल स्वभाव, सीधी कार्यपद्धति एवं स्पष्टवादिता के सूचक होते हैं। यदि बालों में सरलता की अपेक्षा लहरीलापन हो तो ऐसे व्यक्तियों में विनम्रता, सभ्यता, कलाप्रेम, मित्रता एवं दयालुता के गुण होते हैं, किन्तु यदि उपरोक्त लहरीलापन अधिक प्रबल हो जाय तो ऐसे केश घुंघराले कहलाते हैं। ऐसे बालों वाले जातक में मनमौजीपन, चंचलता, दिखावा एवं अहं की प्रवृत्ति अधिक विकसित होती है। प्रायः ऐसे जातक दिखावे में अपने पैसे को अधिक व्यय करते हैं।

जिसके मस्तक पर केश अधिक पीछे उगना शुरू होते हैं वे स्वाभिमानी होते हैं। वे प्रत्येक परिस्थिति में अपने मान की रक्षा चाहते हैं तथा उपेक्षा को जरा भी सहन नहीं करते, पर जिसके सिर पर बाल अधिक आगे से अर्थात् ललाट क्षेत्र से उगना प्रारम्भ करते हैं और पीछे ग्रीवा तक उसी प्रकार ज़मे हुए हों, उसके मानसिक विकास में दुर्बलता होती है। ऐसे जातक संकुचित हृदय, स्वार्थी, निम्न प्रकृति के होते हैं। जिसके मस्तक के अग्रभाग पर आजू-बाजू केश न हों और मध्य में एक केश पंक्ति हो तो जातक का ललाट अर्धचन्द्राकार कहलाता है। ऐसे लोग अध्ययन, मनन एवं चिन्तनप्रिय होते हैं। इसी प्रकार आजू-बाजू बाल हों एवं मध्य में गंजापन हो तो ऐसे लोग शासक, अधिकारप्रिय एवं नेतृत्वक्षमता से युक्त होते हैं।

बालों को एकदम पीछे की ओर सँवारने वाले लोग अदूरदर्शी, जल्दबाज, चंचल एवं उत्तेजित होते हैं। एक किनारे पर माँग निकालकर अधिकांश बाल समूह को दायें या बायें सँवारने वाले दम्भी, ढोंगी, नाटकीय एवं अनैतिक होते हैं। मध्य या कुछ उसके आस-पास माँग निकालकर केश समूह को दो भागों में सँवारने वाले लोग सन्तुलित, सामान्य एवं दयालु होते हैं। इनके अतिरिक्त प्रथम आजू-बाजू तथा बाद में पीछे सँवारने वाले जातक में सतर्कता, सन्देह एवं तर्क करने की प्रवृत्ति होती है।

बालों का स्निग्ध, चिकना, मृदु, कोमल एवं आकर्षक होना जातक के उत्तम स्वास्थ्य, मानसिक विकास, उदारता, मृदुता, धैर्य, स्नेह, रसिकता एवं सम्पन्नता आदि का सूचक होता है। इसके विपरीत सूखे, कड़े, नकुले एवं विकृत केश अस्वस्थता, मानसिक गतिरोध, चिन्ता, भय, क्रोध, हीनता

एवं दरिद्रता के परिचायक होते हैं।

कुछ सामुद्रिकों का कथन है कि सघन केश वाले जातक पण्डित एवम् विद्याप्रेमी होते हैं तथा केशहीन लोग सम्पत्तिवान, नृप तुल्य एवं समृद्ध या एकदम दरिद्र होते हैं। इसी प्रकार कुछ आचार्यों का यह भी कथन है कि पुरुष मस्तक पर केश विरल होना तथा स्त्री मस्तक पर केश सघन होना शुभ होता है, इसके विपरीत स्त्री मस्तक पर केश विरल होना एवं पुरुष मस्तक पर केशों का सघन होना अशुभ होता है।

केश के सम्बन्ध में आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि—"एक रोम-कूप में एक बाल, स्निग्ध, मृदु, कृष्ण वर्ण एवं सामान्य सघन होना श्रेष्ठ एवं सुखी पुरुष का लक्षण है। इसके विपरीत एकमूल से अनेक शाखा वाले विषम; श्वेत, भूरे, मोटे, दो भागों में विभाजित, कड़े, छोटे, वक्र एवम् अधिक सघन केश मन्दबुद्धि, हीन, दरिद्र एवम् निम्न पुरुषों के लक्षण होते हैं।"

स्त्री विशेष फल—श्याम, स्निग्ध, मृदु, आकर्षक तथा सरल केश स्त्रियों को सौभाग्य, सम्पत्ति तथा स्वास्थ्य प्रदान करते हैं, जबकि पीले, लाल, कर्कश, रूखे, फटे, छोटे तथा छितरे केश वाली स्त्रियाँ अशुभ तथा दुःखी होती हैं।

भौंरी—प्रायः कुछ जातकों के शिखर स्थान पर बालों में एक आवृत्त या चक्र होता है जिससे वहाँ के केश अक्सर सँवरते नहीं अपितु बिखरे रहते हैं। इस आवृत्त को भौंरी कहते हैं। यदि यह आवृत्त बायीं ओर हो तो जातक नास्तिक, भौतिकवादी तथा मस्तिष्क प्रधान होता है, किन्तु यदि दायीं ओर हो तो व्यक्ति में आस्तिकता, श्रद्धा, विश्वास तथा आध्यात्मप्रियता के गुण होते हैं। स्त्रियों के मस्तक पर वामावृत्त या दक्षिणावृत्त दोनों ही भौंरी शुभ नहीं होतीं, विशेषकर वामावृत्त तो असौभाग्यकारक ही होती है।

तिल (धब्बे)

मानव शरीर पर उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त तिल, मस या लहसुन आदि के रूप में काले, नीले या लाल कुछ धब्बे होते हैं जिन्हें अंग्रेजी में

डॉट या स्पॉट कहते हैं। इस चिह्न को पाश्चात्य अशुभ तथा पौर्वात्य स्थिति तथा स्थानानुसार शुभ या अशुभ मानते हैं। यह चिह्न दो प्रकार के होते हैं। एक उत्तर वाले अर्थात् यदि कोई तिल मुख के किसी अंग या स्थान विशेष पर हो तो उसी के अनुसार दूसरा चिह्न देह के किसी अन्य अंग या स्थान पर अवश्य होता है, इसे पाश्चात्य बिद्वान सिस्टर मार्क कहते हैं। दूसरा वह तिल होता है जिसके उत्तर में शरीर के अन्य स्थान पर अन्य चिह्न आवश्यक नहीं होता।

आचार्य वराहमिहिर की मान्यता है कि यदि मस का रंग शरीर वर्ण के समान ही हो तथा उसमें उज्जवल कान्ति हो तो वह ब्राह्मणों के लिए हितकर होता है। श्वेत या कुछ रक्तिम वर्ण का मस यदि कान्तिपूर्ण स्थिति में हो तो क्षत्रियों को लाभप्रद होता है तथा उपरोक्त तीनों वर्णों में से किसी भी रंग का या श्याम मस शूद्रों को विशेष फलकारक होता है।

सिर पर तिल समृद्धि तथा ज्ञान का सूचक होता है। ललाट पर मस ऐश्वर्य तथा बुद्धिकारक होता है। भौंह के ऊपर लहसुन अविवेक तथा संकट का प्रतीक होता है। भ्रूमध्य तिल स्वयं की कुटिल प्रवृत्ति किन्तु प्रियजनों के सौख्य का संकेत देता है। पलक पर मस भ्रष्ट चरित्र का द्योतक होता है। नेत्र पर दाग परिवार से प्रेम को इंगित करता है। नेत्र के नीचे तिल चिन्ता उत्पन्न करता है। गाल पर मस सौन्दर्य सुख का परिचायक होता है। नासिका पर धब्बा गन्ध प्रेम तथा भोगकारक होता है। ऊपरी होंठ पर तिल वाक्‌चातुर्य तथा धन प्राप्ति का प्रतीक होता है। निचले होंठ पर दाग मिष्ठान्न प्रेम तथा उदर रोग की सूचना देता है। हनु प्रदेश पर लहसुन सम्पत्ति और नाटकीयता का संकेत देता है। कान पर मस धन संग्रह तथा आभूषण प्रेम को व्यक्त करता है। गले पर तिल ऐश्वर्य तथा भोग के साथ दुर्घटना का सूचक होता है।

उत्तर वाले चिह्न—मस्तक की दायीं ओर यदि तिल हो तो उसका सिस्टर मार्क भुजा या पेट की दायीं ओर होगा। इसी प्रकार बायीं ओर का उत्तर भी बायें हाथ या पेट के बायीं ओर सम्भव है। दायीं या बायीं भृकुटि के उत्तर का तिल उसी के अनुरूप वक्षस्थल पर दृष्टिगोचर हो सकता है। यदि वह चिह्न भ्रूमध्य में हो तो उसका उत्तर मध्य पेट पर होगा। नासिका

पर मस हो तो उसका उत्तर तिल नाभि स्थल पर होना चाहिए। कभी-कभी यह नाभि के आस-पास भी सम्भावित रहता है। नाक की नोक पर के चिह्न का उत्तर गुदा स्थान पर होता है। कान के तिल का उत्तर चिह्न पेट पर तथा कनपटी के तिल का उत्तर तिल कोख स्थान पर सम्भावित होता है। गाल पर के तिलों का उत्तर चिह्न नितम्ब पर सम्भावित माना जाता है। होंठ के चिह्नों का उत्तर तिल गुदा के पास या पैर के घुटनों पर प्रायः दिखलाई पड़ता है। हनु पर स्थित तिल का उत्तर चिह्न पार्श्व जंघा या पैर पर हो सकता है।

स्त्री विशेष फल—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है स्त्रियों के वाम भाग में तिल विशेष शुभदायक होते हैं। उसी आधार पर जिस ललना के मस्तक के बायीं ओर तिल हो वह समृद्ध तथा सुखी, ललाट पर मस हो वह सम्पत्तिवान, आँख पर तिल हो तो वह सती, गाल पर तिल हो वह भोगी, कान पर दाग हो वह लोभी, नासिका पर तिल हो वह चंचल, हनु पर मस हो वह लजीली तथा ग्रीवा पर तिल हो वह अधिकारप्रिय होती है। इसके विपरीत यदि उपरोक्त चिह्न दायीं ओर हों तो उनके परिणामों की शक्ति क्षीण हो जाती है।

सात स्वर्णिम सिद्धान्त

सामुद्रिक शास्त्र के किसी भी विभाग मुखाकृति, हस्तरेखा या पदलक्षण के माध्यम से जातक का परीक्षण करते समय निम्न सप्त स्वर्णिम सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए—

(१) शरीर के पाँच अंग दीर्घ हों—बाहु, नेत्र, कुक्षि, नासापुट तथा वक्ष-स्थल।

(२) शरीर के चार अंग ह्रस्व हों—ग्रीवा, कर्ण, पीठ तथा जंघा।

(३) शरीर के छः अंग उन्नत हों—नाक, नेत्र, ललाट, दशन, मस्तक तथा हृदय।

(४) शरीर के पाँच अंग सूक्ष्म हों—अंगुलिपर्व, दशन, केश, नाखून तथा चर्म।
(५) शरीर के सात अंग रक्तिम हों—करतल, पदतल, नाखून, जिह्वा, होंठ तथा नेत्र-छोर।
(६) शरीर के तीन तत्त्व गम्भीर हों—स्वर, बुद्धि तथा नाभि।
(७) शरीर के तीन अंग विस्तीर्ण हों—मस्तक, ललाट तथा वक्षस्थल।

उपरोक्तानुसार जिस जातक में अधिकांश गुण हों वह निश्चित रूप से महत्वाकांक्षी, कर्मठ, व्यावहारिक, उदार, ज्ञानी, समृद्ध तथा सफल होता है।

चेष्टा प्रकरण

विश्वप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० कार्लयुंग का कथन है कि—मानसिक विचारों में कई बातें ऐसी समरूप और मिलती-जुलती पाई गई हैं कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध केवल आकस्मिक ही नहीं हो सकता, वे अवश्य ही एक-दूसरे के साथ किसी अन्य घटनाचक्र द्वारा सम्बद्ध होंगी।

इससे स्पष्ट है कि प्रथम काल में प्रश्नकर्ता के शब्द तथा कृत्य आदि केवल संयोग मात्र नहीं होते वरन् जातक की उस समय की समस्त चेष्टाओं का अपने आप में विशेष महत्त्व तथा अर्थ होता है। भारतीय विद्वान आचार्य वराहमिहिर इस सम्बन्ध में कहते हैं कि—दैवज्ञ को चाहिए कि परीक्षण काल में जातक तथा अन्य व्यक्तियों के दिशा, स्थान, हृत-पदार्थ, शब्द तथा चेष्टाओं आदि पर भी ध्यान दें, क्योंकि सर्वज्ञ, चर-अचरात्मक, सर्वदर्शी तथा सर्वव्यापी परमात्मा शुभाशुभ फल को चेष्टा तथा शब्दों के माध्यम से, उनके अर्थों को सूचित करता है।

ऐसी मान्यता है कि सर्वप्रथम देवगुरु आचार्य वृहस्पति ने चेष्टा विद्या को जन्म दिया था, तभी से आज तक प्रायः अधिकांश दैवज्ञ इस ज्ञान का अपने-अपने क्षेत्र में उपयोग करते आए हैं। भारतीय सामुद्रिकाचार्यों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसे मान्यता प्रदान की है। आधुनिक

वैज्ञानिक हस्तरेखाविद् विलियम जी बैन्हम ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "दि लॉज आफ साइन्टिफिक हैण्ड रीडिंग" के तृतीय अध्याय में इस विद्या को, 'पोज एण्ड कैरिज ऑफ हैण्ड्स' शीर्षक के अन्तर्गत उचित स्थान दिया है।

पाठकों के सन्दर्भ हेतु इस विद्या के कुछ तथ्य प्रस्तुत हैं। यदि जातक दैवज्ञ से भेंट करते समय अपने हाथों को छुपाने या उन्हें शरीर के पास चिपकाए रखने का प्रयास करे तो यह तथ्य को स्पष्ट करता है कि सम्बन्धित जातक के मन में कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें वह बतलाना नहीं चाहता या उसके चरित्र में कहीं कुछ अन्धकारपूर्ण पक्ष अवश्य है।

जो जातक इसके विपरीत सीधे तथा सरल स्थिति में अपने हाथों को लिए हुए दैवज्ञ के सामने आए वह व्यक्ति सरल हृदय, स्नेही, स्पष्टवक्ता तथा उज्जवल चरित्र से युक्त होना सम्भावित है।

जिस व्यक्ति के आते समय उसके दोनों हाथ इधर-उधर अधिक झूलते हों, वह अस्थिर, जल्दबाज, अविवेकी एवं अदूरदर्शी होता है। इसके विपरीत यदि उसके दोनों हाथ सामान्य से कम हिलते हों तो उसमें सतर्कता, सन्देह एवं अविश्वास की भावना होना सम्भावित होती है।

जिन व्यक्तियों को अपने हाथों को स्थिर रखने का कोई स्थान नहीं मिलता अर्थात् जो कभी ऊपर-नीचे, आगे-पीछे या आजू-बाजू अपने हाथों को रखते से प्रतीत हों उनमें अनिश्चितता, अविवेक, अज्ञान या मूर्खता के दुर्गुण हो सकते हैं।

यदि प्रश्नकाल के समय जातक दैवज्ञ के वाम भाग में बैठे तो उसके चरित्र या प्रश्न में शुभ गुण सम्भावित नहीं होते, किन्तु यदि दक्षिण भाग में अपना आसन ग्रहण करे तो व्यक्ति में शुभ भावनाओं का होना सम्भावित रहता है। इसके साथ ही यदि जातक सामान्य से अत्यधिक निकट बैठे तो उसमें असभ्यता, मूर्खता या उच्छृंखलता के दोष होते हैं एवं यदि वह अधिक दूर बैठे तो यह स्पष्ट होता है कि जातक के मन में भय, संकोच या निम्न विचारधारा है।

यदि जातक प्रश्न काल में अपने हाथों से किसी वस्तु को तोड़े-फोड़े या मरोड़े तो इससे व्यक्त होता है कि जातक में विध्वंसात्मक प्रवृत्ति है, किन्तु यदि वह अपने हाथ की वस्तु को साफ करे, सँवारे या सँभाले तो उस

से प्रतीत होता है कि जातक में रचनात्मक मनोवृत्ति है।

इसी प्रकार यदि जातक दैवज्ञ से चर्चा करते समय अपने मस्तक का स्पर्श करे तो मान चिन्ता, कान का स्पर्श करे तो पश्चात्ताप, नाक का स्पर्श करे तो यश विचार, मुख का स्पर्श करे तो आजीविका प्रश्न, पार्श्व ग्रीवा का स्पर्श करे तो काम चिन्ता, उदर का स्पर्श करे तो गर्भ विचार, गुप्तेन्द्रिय का स्पर्श करे तो वासना एवं पैर का स्पर्श करे तो कलह-चिन्तन का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है।

यदि जातक प्रश्न काल में दैवज्ञ के मुख की ओर देखे तो वह स्पष्ट-हृदय, सत्यप्रिय, साहसी एव उच्च चरित्र से युक्त होगा, यदि मुख से ऊपर आकाश या छत की ओर देखे तो निराश, भीरु, अकर्मठ, आलसी एवं भाग्य-वादी होगा एवं यदि नीचे की ओर दृष्टि रखे तो वह नीच कर्मयुक्त, अप-राधी एवं तामसी प्रवृत्ति का होता है।

जो व्यक्ति दैवज्ञ से चर्चा करते समय अपने हाव-भाव से अस्थिरता प्रकट करे अर्थात् इधर-उधर देखे, किसी वस्तु को उठाये और रखे या एक आसन पर ठीक से नहीं बैठे, वह चंचल, असभ्य, उच्छृंखल एवं आत्मविश्-वास से हीन होता है।

जो जातक प्रश्नकाल में नाक-मुंह सिकोड़े, ललाट पर सिलवटें खींचे, हाथ-पैर की अंगुलियाँ मरोड़े तो यह स्पष्ट संकेत करता है कि उसकी मान-सिक स्थिति असन्तुलित व अस्थिर है, उसमें थकान, तनाव या अस्वस्थता है या उसमें घृणा, द्वेष, डाह या उपेक्षात्मक प्रवृत्ति है।

चर्चा के समय जिस जातक की वाणी या स्वर में सौम्यता, गम्भीरता तथा सन्तुलन न हो अपितु कर्कशता, रूखापन, गद्गद्ता, क्षीणता तथा कम्पन हो तो उससे स्पष्ट होता है कि सम्बन्धित जातक के मन में भय, चिन्ता, उद्वेग, उत्तेजना या अविश्वस्तता के विचार हैं।

इसी प्रकार यदि प्रश्न काल में मेघ या बैल की गर्जना हो तो कार्यसिद्धि, गाय, ब्राह्मण या सधवा स्त्री दृष्टिगोचर हो तो सफलता तथा वस्तु का गिरना, टूटना या रोना सुनाई पड़े तो विघ्न या संकट सम्भावित होता है।

वस्तुतः दैवज्ञ को अपने परीक्षण काल में सामुद्रिक शास्त्र के अन्य तत्त्वों के साथ ही उपरोक्त तथ्यों पर भी ध्यान देना चाहिए ताकि उसके मुख की

वाणी के साथ प्रकृति के संकेतों का सामंजस्य स्थापित हो सके और उसकी भविष्यवाणी कसौटी पर सच्ची व खरी उतरे।

स्वरोदय

डा० ई० पाडोल्लास्की का कथन है—"जहाँ तक मानव बुद्धि की चैतन्यतथा का प्रश्न है, प्राणवायु एक परमावश्यक तत्त्व है।"

वस्तुतः यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि श्वास द्वारा मानव आक्सीजन ग्रहण करता है तथा प्रश्वास के माध्यम से कार्बन डाइआक्साईड का परित्याग करता है। सामान्यतः एक दिन की अवधि में मनुष्य लगभग २१६०० बार श्वासोच्छवास क्रिया करता है, जिसमें उसे प्रति घण्टे लगभग ४० गैलन आक्सीजन ग्रहण करने की आवश्यकता होती है। यदि इसमें प्राणवायु की न्यूनता हो जाय तो मानव की चेतना शक्ति का ह्रास होने लगता है और कभी-कभी तो वह चेतनाशून्य होकर अपने प्राण तक खो सकता है।

यह तो हुई इस सम्बन्ध में पूर्ण वैज्ञानिक बात, किन्तु अभी भी कई ऐसे तथ्य हैं जिनकी तह तक यह भौतिक विज्ञान नहीं पहुँच पाया है।

जैसा कि प्लड़ंक का अभिप्राय है—"विज्ञान को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उन्हें पूर्णतया और विस्तारपूर्वक सुलझाने में वह कदाचित समर्थ नहीं हो सकता है।"

प्रो० बी० वी० रमन के शब्दों में कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा—"प्राचीन महर्षियों ने मन की गम्भीर एकाग्रता द्वारा ऐसे-ऐसे महान् तथ्य खोज निकाले थे कि आइन्सटीन और एडीसन अभी तक उनके बाहरी स्तर को ही छू पाए हैं।" इससे स्पष्ट है कि हमारा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अभी श्वासोच्छवास के बाह्य स्थूल रूप को ही देख पाया है, उनके आन्तरिक सूक्ष्म स्वरूप को नहीं।

भारतीय ऋषि-महर्षियों के अनुसार श्वास-प्रश्वास और पंच महाभूतों में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। देखने-सुनने में यह बात बड़ी आश्चर्यजनक;

कौतूहलपूर्ण एवं अविश्वसनीय लगती है, किन्तु डा० के० एन० मिश्र के शब्दों में यह अद्‌भुत शक्ति—"पर हाँ ! जब इसकी सहायता से साधारणतया कठिन तथा असम्भव कार्यों को आप मन्त्र शक्ति के द्वारा हुआ-सा देखेंगे, तब इसकी अलौकिक शक्ति का पता चलेगा, इसीलिए भौतिक युग कलिकाल में आचार्यों ने स्वरोदय को अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया है।

वास्तव में स्वरोदय, योग का एक सहज एवं सरल रूप है। जीवन के विभिन्न क्रिया-कलापों में इसका उपयोग कर सफलता प्राप्त की जा सकती है। भविष्य कथन के सम्बन्ध में तो इसका उपयोग और भी आवश्यक है। पं० श्यामसुन्दर का इस सम्बन्ध में कहना है कि—"मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि भविष्यकथन करने की प्रचलित प्रणालियों में, जैसे ज्योतिष, हस्तरेखा, अंक ज्योतिष आदि, यदि स्वरोदय-विज्ञान का भी प्रयोग आरम्भ कर दें तो भविष्यकथन सरल एवं सत्यतापूर्ण बन सकता है।"

संत चरणदास ने तो इसे सब योगों का योग कहकर और भी अधिक महत्त्व दिया है—

"सब योगन का योग है, सब ज्ञानन को ज्ञान।
सबै सिद्धि को सिद्धि है, तत्त्व सुख को ध्यान।"

वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि स्वरोदय-विज्ञान योग साधना का एक सरलतम रूप है, जो मनुष्य को काल विशेष के समय, उसकी बुद्धि चैतन्यता को स्पष्ट बतलाकर, उसे प्रकृति के सूक्ष्म क्रिया-कलापों के साथ सन्तुलन स्थापित कर, सफलता प्राप्त करने हेतु मार्ग दर्शन देता है।

आचार्यों के अनुसार प्रकृति में, निश्चित पद्धति के अनुरूप क्रमशः पंचभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश निरन्तर क्रियाशील रहते हैं। सूर्योदय तक यह तत्त्व बिना एक क्षण के रुके लगातार अपनी क्रिया-प्रक्रिया करते रहते हैं। सूर्य की प्रथम रश्मि के प्रस्फुटित होते ही प्रत्येक बुधवार को सर्वप्रथम पृथ्वी तत्त्व, सोम और शुक्रवार को वायु तत्त्व, रवि और मंगलवार को अग्नि तत्त्व, शनिवार को वायु तत्त्व एवं गुरुवार को आकाशतत्त्व अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं। उक्त पाँचों तत्त्व अपने प्रारम्भ काल से क्रमशः ६, १२, १८, २४ एवं ३० मिनट तक क्रियाशील रहते हैं। इसके बाद क्रमानुसार निरन्तर पुनरावृत्तियाँ होती रहती हैं। उपरोक्त तत्त्वों के उक्त

महादशा काल में प्रत्येक तत्त्व की अन्तर्दशा भी चलती है। निम्न कोष्ठक से यह स्पष्ट हो जायेगा।

॥ तत्त्व तथा अन्तर्तत्त्व ॥

	तत्त्व	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
समयावधि मिनिट एवं सैकिण्ड में अन्तर्तत्त्व	पृथ्वी	०-२४	०-४८	१-१२	१-३६	२-००
	जल	०-४८	१-३६	२-२४	३-१२	४-००
	अग्नि	१-१२	२-२४	३-३६	४-४८	६-००
	वायु	१-३६	३-१२	४-४८	६-२४	८-००
	आकाश	२-००	४-००	६-००	८-००	१०-००
	योग	६-००	१२-००	१८-००	२४-००	३०-००

कुल समय १ घण्टा ३० मिनट

यह तो हुई ब्रह्माण्ड तत्त्व की बात, अब मानव पिण्ड को देखिए। योग दर्शन में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का अत्यधिक महत्त्व है। उक्त तीनों में से कौन नाड़ी किस स्थिति में है, इसका ज्ञान भी होना चाहिए।

(१) बायाँ नथुना—इड़ा, इंगला या चन्द्र नाड़ी

(२) दायाँ नथुना—पिंगला या सूर्य नाड़ी

(३) दोनों नथुने—सुषुम्ना नाड़ी

श्वास-प्रश्वास की गति नाक के जिस नथुने से तेज चल रही हो, उसी के अनुसार वह नाड़ी क्रियाशील होती है।

नाड़ी के पश्चात् तत्त्व की स्थिति प्रश्वास की लम्बाई के अनुसार निम्न प्रकार होती है।

लम्बाई — तत्त्व

(१) चार अंगुल—अग्नि तत्त्व

(२) आठ अंगुल—वायु तत्त्व

(३) बारह अंगुल—पृथ्वी तत्त्व

(४) सोलह अंगुल—जल तत्त्व

(५) बीस अंगुल—आकाश तत्त्व

इस शास्त्र के अनुसार सूर्योदय काल से ढाई-ढाई घड़ी के क्रम से सामान्यतया एक-एक नासिका छिद्र से श्वास-प्रश्वास क्रिया होती रहती है। स्थूल रूप से दिन-रात में बारह बार एक छिद्र और बारह बार दूसरा छिद्र क्रम से क्रियारत रहता है। दोनों नथुनें या सुषुम्ना नाड़ी प्रायः सम बहुत कम चलती है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा को सूर्योदय काल से एक स्वस्थ एवं सामान्य व्यक्ति का बायाँ नथुना या इड़ा नाड़ी अपना कार्य प्रारम्भ करती है। कृष्ण पक्ष की इन्हीं तिथियों में और अमावस्या को दायाँ नथुना या पिंगला नाड़ी आरम्भ होती है।

उक्त संक्षिप्त, किन्तु महत्त्वपूर्ण जानकारी के पश्चात् अब हम सत्य भविष्यवाणी हेतु दैवज्ञ को किस दिन, किस स्वर तथा किस तत्त्व में फलादेश देना चाहिए, इसको स्पष्ट करेंगे।

सफल भविष्य कथन हेतु सोम, बुध, गुरु एवं शुक्रवार को बायें स्वर अर्थात् इड़ा, इंगला या चन्द्र नाड़ी की स्थिति में, पृथ्वी या जल तत्त्व की उपस्थिति में तथा रवि, मंगल एवं शनिवार को दायें स्वर अर्थात् पिंगला या सूर्य नाड़ी एवं उपरोक्त दोनों में से किसी भी तत्त्व की उपस्थिति में फल निर्देश देना उपयुक्त होता है।

यदि इसके साथ ब्रह्माण्ड तत्त्व की स्थिति में भी पृथ्वी या जल तत्त्व की महादशा एवं अन्तर्दशा का सही संयोग स्थापित कर, उस काल विशेष में भविष्य कथन किया जाय तो भविष्यवाणी निश्चित रूप से शत-प्रतिशत सही निकलेगी।

□□□

व्यक्ति की मुखाकृति उसके मन, मस्तिष्क एवं सम्पूर्ण शरीर का एक्स-रे है, जिसमें उसका चरित्र, स्वभाव, रुचि एवं प्रकृति आदि सब कुछ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक की सहायता से आप किसी भी व्यक्ति के सम्बन्ध में केवल उसकी मुखाकृति देखकर ही, सही-सही भविष्यवाणी कर सकते हैं।



अंकुर पब्लिकेशन्ज़